Entered 22-5-45

Provincial ...

॥ श्रीः ॥

द्राह्यायणगृह्यसूत्रम् ।

रुद्रस्कन्दवृत्तिसहितम्

सामवेदस्य शाखाया गृह्यकर्मप्रतिपादकम्
भाषावृत्तिसमन्वितम् ।

Q
17

उदयनारायणवर्मणा लोकोपकाराय
निर्मितया नागरी भाषया
समलंकृतम् ।

DRAHYANA GRIHYA SUTRA.

With the

COMMENTARY OF RUDRASKANDA

TRANSLATED & PUBLISHED
by

Thakur Udaya Narayana Singh.

Shastra Publishing House
Madhurapur, Bidhupur Bazar,
Mozaffrpur 1934

ALL RIGHTS RESERVED.

प्रथमवार } सन् १९३४ ई० { मू० २॥)
१००० } सं० १९९१ वि० {

Printed by Pt. Brahmadeva Misra at the
Brahma Press Etawah.

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY

Acc. No. ______

Book No. ______

८९१.२९

❀ प्रस्ताव ❀

इस समय भारत में सब ओर से सत्य सनातन वैदिक धर्म पर आक्रमण होरहे हैं जिससे हम लोगों के धर्मसे श्रद्धा प्रेम हटता जाता है। इसका मुख्य कारण धर्म की शिक्षा का अभाव और अपने धर्म्म को ठीक २ न जानना आदि है। अतएव हम लोगों को चाहिये कि वैदिक धर्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त करें इसका साधन भारत के प्राचीन श्रौत, गृह्य, धर्म सूत्रादि ग्रन्थों में उपदिष्ट कर्त्तव्यों को समझें बूझें। वेद ४ हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चारों वेदों की ११३१ वा ११३७ शाखायें हैं। जिनमें से ऋग्वेदकी २१ कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शुक्ल यजुर्वेद की १५, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ६ शाखायें हैं। प्रत्येक शाखा की मन्त्र संहिता को पढ़ने पढ़ाने के लिये वेदों के छः २ अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) हैं। इन छः अङ्गों में से कल्प नामक अङ्ग के श्रौत तथा गृह्य आदि भेद हैं। गृह्यसूत्रों में स्मार्त्तधर्म्मों का विधान होने से इस समय कर्म में प्रवृत्ति कराने के लिये गृह्य तथा धर्म सूत्रों का प्रकाशन करना परम आवश्यक है। अतएव हम ने पहिले गृह्य सूत्रों का ही प्रकाशन आरम्भ किया है।

यह गृह्यसूत्र सामवेद की शाखाओं में से है। गृह्यसूत्रों में प्रायः एक से ही कर्त्तव्य संस्कार आदि का उपदेश है, परन्तु शाखा भेद से कुछ भेद भी अनिवार्य है। गृह्यसूत्रों में कुछ ऐसे भी धर्म उपदिष्ट हैं जो काल भेद अधिकारी आदि भेद से इस समय कर्त्तव्य नहीं है।

जिस देशकाल में और जिस रीति से जो काम जिसके लिये कर्त्तव्य कहा है, वह उसी देश काल में, उसी रीति से किया हुआ, उसी मनुष्य के लिये उचित धर्महै। उसी को अन्य प्रकार से करने पर

वही अधर्म हो जाता है। जैसे रोना सर्वत्र बुरा समझा जाता है, परन्तु वेद प्रमाणानुसार पिता के घर से पतिगृह को जाती हुई कन्या का रोना अच्छा माना जाता है। गाली देना सर्वत्र बुरा काम है, पर विवाह में स्त्रियाँ और पुरुष गालियों को शुभ मानते हैं। इसी के अनुसार यज्ञादि में पशुओं का आलम्भन भी पूर्वकाल में बुरा नहीं माना जाता था, परन्तु लोक रीति से अपना मांस बढ़ाने के लिये शास्त्र-विरुद्ध पशु हिंसा अत्यन्त बुरी मानी जाती थी। जब ऋषियों ने ऐसा विकराल समय आते देखा तब पहिले से ही (लोकविक्रुष्टमेव च) लिखगये कि जो धर्म्म जिस समय लोक में बुरा समझा जावे उस समय वह कर्त्तव्य नहीं है,इसलिये "पश्वालम्भ 'कर्म इस समय कर्त्तव्य नहीं है। इस कारण ऐसे विचार इन ग्रन्थों में देखकर उद्वेग या संकोच नहीं करना चाहिये। सब काम देश कालों में सबके लिये जब कदापि हो ही नहीं सकते तो इन्हीं ग्रन्थों का सब लेख हमारे अनुकूल कैसे हो जावेगा ? जैसे शीतकाल में खसखस की टट्टी व्यर्थ होने पर भी गर्मी आने पर स्वयं सार्थक हो जाती है या जैसे गर्मी के दिनों में या गर्म देश में शीत के वस्त्र बोझा मात्र व्यर्थ प्रतीत होने पर भी फिर शीत का देश या काल आने पर सार्थक उपकारी हो जाते हैं। तथा जैसे पंसारी की दूकान में रक्खा हुआ विष कभी किसी अधिकारी के लिये अमृत के समान उपकारी हो जाता, इसलिये उससे द्वेष घृणा करना भूल है उसी प्रकार इन ग्रन्थों के पशु संज्ञपनादि विषयों से द्वेष या घृणा नहीं करना चाहिये।

निवेदकः—

ठाकुर उदयनारायण सिंह.

Q/17

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
गृह्य कर्मों के उद्देश	१	पुंसवन	५६
सामान्यतः कर्मकाल	३	सीमन्तोन्नयन	६२
यज्ञोपवीत	४	निष्क्रमण	६३
आचमन	५	सोष्यन्ती होम	६४
कुशासन	७	जात कर्म	६५
दिशाओं का नियम	७	नामकरण	६६
होम का स्थान	७	चूड़ा करण	७०
स्नान	७	उपनयन	७५
हाथों के नियम	८	केशान्त (गोदानिक)	८३
मन्त्रों के नियम	८-९	ब्रह्मचारि कृत्य	८४
पाक यज्ञ	९	स्नान (आलवन)	९५
ब्रह्मा	९	स्नातक कृत्य	९७
उपलेपनादि	१२	पुष्टिकाम का उपदेश	१०२
होम के पूर्व कृत्य	१२-१७	उपाकर्म	१०८
विवाह	१८	अनध्याय	११०
गर्भाधान	३६	आश्वयुजी कर्म	११३
गृह्य का अर्थ	३७	आग्रहायण	११५
औपासन	३८	अष्टका	११७
वैश्वदेव	४१	अन्वष्टका	१२४
दर्श और पौर्णमास	४७	पुष्टि कामार्थ कर्म	१३३
आग्नेय स्थाली पाक	५६	मधुपर्क के योग्य व्यक्ति	१५२

वही अधर्म हो जाता है। जैसे रोना सर्वत्र बुरा समझा जाता है, परन्तु वेद प्रमाणानुसार पिता के घर से पतिगृह को जाती हुई कन्या का रोना अच्छा माना जाता है। गाली देना सर्वत्र बुरा काम है, पर विवाह में स्त्रियाँ और पुरुष गालियों को शुभ मानते हैं। इसी के अनुसार यज्ञादि में पशुओं का आलम्भन भी पूर्वकाल में बुरा नहीं माना जाता था, परन्तु लोक रीति से अपना मांस बढ़ाने के लिये शास्त्र-विरुद्ध पशु हिंसा अत्यन्त बुरी मानी जाती थी। जब ऋषियों ने ऐसा विकराल समय आते देखा तब पहिले से ही (लोकविक्रुष्टमेव च) लिखगये कि जो धर्म्म जिस समय लोक में बुरा समझा जावे उस समय वह कर्त्तव्य नहीं है,इसलिये "पश्वालम्भ' कर्म इस समय कर्त्तव्य नहीं है। इस कारण ऐसे विचार इन ग्रन्थों में देखकर उद्वेग या संकोच नहीं करना चाहिये। सब काम देश कालों में सबके लिये जब कदापि हो ही नहीं सकते तो इन्हीं ग्रन्थों का सब लेख हमारे अनुकूल कैसे हो जावेगा? जैसे शीतकाल में खसखस की टट्टी व्यर्थ होने पर भी गर्मी आने पर स्वयं सार्थक हो जाती है या जैसे गर्मी के दिनों में या गर्म देश में शीत के वस्त्र बोझा मात्र व्यर्थ प्रतीत होने पर भी फिर शीत का देश या काल आने पर सार्थक उपकारी हो जाते हैं। तथा जैसे पंसारी की दूकान में रक्खा हुआ विष कभी किसी अधिकारी के लिये अमृत के समान उपकारी हो जाता, इसलिये उससे द्वेष घृणा करना भूल है उसी प्रकार इन ग्रन्थों के पशु संज्ञपनादि विषयों से द्वेष या घृणा नहीं करना चाहिये।

निवेदकः—

ठाकुर उदयनारायण सिंह.

9/17

विषय-सूची।

विषय	पृष्ठ संख्या
गृह्य कर्मों के उद्देश	१
सामान्यतः कर्मकाल	३
यज्ञोपवीत	४
आचमन	५
कुशासन	७
दिशाओं का नियम	७
होम का स्थान	७
स्नान	७
हाथों के नियम	८
मन्त्रों के नियम	८-९
पाक यज्ञ	९
ब्रह्मा	९
उपलेपनादि	१२
होम के पूर्व कृत्य	१२-१७
विवाह	१८
गर्भाधान	३६
गृह्य का अर्थ	३७
औपासन	३८
वैश्वदेव	४१
दर्श और पौर्णमास	४७
आग्नेय स्थाली पाक	५६
पुंसवन	५९
सीमन्तोन्नयन	६२
निष्क्रमण	६३
सोष्यन्ती होम	६४
जात कर्म	६५
नामकरण	६६
चूड़ा करण	७०
उपनयन	७५
केशान्त (गोदानिक)	८३
ब्रह्मचारि कृत्य	८४
स्नान (आलवन)	९५
स्नातक कृत्य	९७
पुष्टिकाम का उपदेश	१०२
उपाकर्म	१०८
अनध्याय	११०
आश्वयुजी कर्म	११३
आग्रहायण	११५
अष्टका	११७
अन्वष्टका	१२४
पुष्टि कामार्थ कर्म	१३३
मधुपर्क के योग्य व्यक्ति	१५२

द्राह्यायणगृह्यसूत्रम् ।

रुद्रस्कन्दीयवृत्तिसहितम् ।

अथातो गृह्या कर्माणि ॥ १ ॥

अथ अनन्तरम् । कस्मादनन्तरम् । 'देव सवितः' इत्यादिमन्त्र-स्वच्छाखाध्ययनात् । यतोऽनधीतवेदस्य मन्त्रापरिज्ञानात् वक्ष्यमाणेषु वाक्येषु कर्मानुष्ठानयोग्यतया प्रतिपत्तुमशक्यं, अतस्तदनन्तरमिति गम्यते । ननु—मन्त्रमात्राध्यनादपि शक्यं प्रतिपत्तुम् । सत्यम्—यदि मन्त्रमात्राध्ययने विधिस्स्यात् स्यादेवं,कृत्स्नवेदाध्ययन एव विधिप्रवृत्तः । विध्यभावे को दोषः? इच्छानिबन्धनमध्ययनं स्यात् । तथा सत्यध्ययनस्य पुरुषप्रतिपत्त्युपायत्वात् तस्याश्च तत्साध्यपुरुषार्थपरामर्शापेक्षत्वात् मन्त्राणां चातीन्द्रियपुरुषार्थसाधनकारोपकारिप्रकाशनशक्तिसद्भावनि-श्चयप्रमाणाभावेन तद्विवक्षाया असम्भवात् अवश्यमन्यविवक्षया भवितव्यम् । अन्यविवक्षया चोच्चरितस्याप्रामाण्यमाहुर्मीमांसकाः । ग्रन्थगौरवभयादस्माभिर्न लिख्यते । अप्रमाणभूतस्य च साधनत्वायो-गात् न तावन्मात्राध्ययनस्य वृत्तत्वम् । वैधे त्वध्ययने 'स्वाध्यायोऽध्ये-तव्यः' इत्यक्षरप्रधानत्वान्निर्देशस्य संस्क्रियमाणाक्षरद्वारेण च पुरुषार्था-वबोधनरूपप्रयोजनसिद्धिसम्भवात् स्वाध्यायाध्ययनस्य ज्ञानसंपादनद्वारा प्रामाण्यम् । वैधं त्वध्ययनं नियतक्रमत्वात् न तावन्मात्रस्य संभवति । एवमपि किमिति न तत्परस्य वृत्तत्वम् । एकत्वाद्विधेरन्तरास्थितौ विधिविरोधात् । न हि प्रधानभूतामध्ययनक्रियामपरिसमाप्य तदपे-क्षिते व्यापारान्तरे प्रवृत्तिः ॥

अतश्शब्दो वक्ष्यमाणं प्रति वृत्तस्याध्ययनस्य पर्यवसानलक्षणं हेतुत्वमाह । अध्ययनविधिर्हि अर्थावबोधपर्यन्तोऽनुष्ठानयोग्यमवबोधं

विना न पर्यवस्यति । 'देव सवितः प्रसुव' इत्यादिमन्त्रोत्पन्नश्च अवबोधो न गृह्यशास्त्रोपदेशं विनाऽनुष्ठानयोग्यो भवति । अत एष सूत्रार्थः—अध्ययनान्तरं तत्पर्यवसानादेव हेतोः गृह्याणि कर्माण्युपदेक्ष्याम इति ॥

औपासनाख्योऽग्निर्गृह्यः 'यस्मिन्नग्नौ पाणिं गृह्णीयात् स गृह्यः' इति वचनात् । तत्साध्यानि कर्माणि लक्षणया गृह्याणीत्याह । अत औपासनहोमादिषु गृह्याग्निमत एवाधिकार इत्युक्तं भवति । आहत्य विहितं वर्जयित्वा यथा 'पुनर्मामैतु' इति ब्रह्मचारिणः । चौलादीनि बालसंस्कारार्थतया तच्छेषत्वेन तद्यपि बोध्यन्ते, तथाऽपि 'पुत्रं संस्कुर्यात्' इत्येवमादिवचनात् पितुरपि तानि कृत्यान्येव । स्वकृत्यानि च सर्वाण्यग्निसाध्यान्यस्मिन्नेवाग्नौ कार्याणि । अस्य सर्वसाधारणत्वेनोत्पन्नत्वात् अग्न्यन्तराक्षेपे प्रमाणान्तराभावाच्च । बालकृत्यमपि प्रसङ्गसिद्धत्वान्नाग्न्यन्तरमाक्षिपति । यदा तु सर्वाधानेन पितुरप्यग्न्यभावस्तदा बालकृत्येनाऽऽक्षिप्यते लौकिकाग्निस्सर्वहोमेषु समाचारसिद्धत्वात् लौकिकस्य । पिताऽपि तस्मिन्नेवाग्नौ संस्कुर्यात् विद्यमाने गृह्ये उपात्तस्य विद्यमानत्वादुपादानक्षमः । अत्र परसंस्कारार्थान्येकदेशं प्रणीय तस्मिन्नेव कार्याणि । समाप्तेषु तस्य लौकिकत्वमित्यस्मदुपलब्धदेशे समाचारः । यद्येवमेव समाचारस्सार्वत्रिकस्स्यात् तथैव श्रुतिकल्पनया प्रमाणं स्यात् । अथ तु देशान्तरे विगानं स्यात्, कृत्स्न एव परार्थान्यपि स्युः, नाप्यग्नेरन्ते लौकिकत्वम् । यदा त्वनग्निः पिता भार्यामरणादिना यदि शास्त्रान्तरेष्वनग्नेस्संस्कारप्रतिषेधो विद्यते तदाऽन्येन कारयेत् । अथ तु न विद्यते स्वयमेव लौकिकेऽग्नौ कुर्यात् । ननु—अन्यदीयेऽग्नावन्यः किमिति न करोति । आहवनीयादिवत् पुरुषविशेषं प्रति नियतत्वात् । यस्य यो गृह्यः स तस्यैव संस्कारयोग्यः ॥

गृह्याणीति प्राप्ते छान्दसो लुक्कृतः छन्दस्तुल्यत्वमस्य शास्त्रस्य गमयितुम् । तुल्यत्वं च वेदमूलत्वेन मन्वादिवदतीन्द्रियार्थे प्रामाण्यात् वेदमूलत्वाच्च । वेदमूलेषु स्मृतिशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च यद्यदस्य शास्त्रस्यापेक्षितं विद्यते तस्य तस्य सङ्ग्रहस्सिद्धो भवति, सर्वेषामध्ययनविध्या-

क्षिप्ततया एकविज्ञानविषयत्वात् । अपेक्षाऽभावे त्वविरोधिनामपि न समुच्चयः, परामर्शहेत्वभावेन वाक्यार्थस्य पर्यवसानात् । गृह्याणीति-सिद्धे कर्माणीतिवचनमग्न्यन्तरसाध्यस्यान्वष्टक्यादेरनग्निसाध्यस्य च सङ्ग्रहार्थम् । तस्य च प्रयोजनं वक्ष्यमाणायाः परिभाषायाः साधारणत्वं सूचयितुम् । अत एष वाक्यार्थः—गृह्याण्यगृह्याणि च कर्माण्युपदेक्ष्याम इति । गृह्यसाहचर्यादगृह्याण्यप्यौपासनवत एवेतिकेचित् ॥ १ ॥

भा०—अब श्रौत कर्म्म दर्श पौर्णमास आदि के कहने पश्चात् सदाचार सम्बन्धी उपनयनादि गृह्य (स्मार्त्त) कर्म्मों को कहेंगे । यह अधिकार सूत्र है—यहाँ से लेकर इस ग्रन्थ की समाप्ति तक जो कुछ कहा जायगा, उसको गृह्य कर्म्मों के विषय में जानना ॥ १ ॥

उदगयनपूर्वपक्षपुण्याहेषु प्रागावर्तनादह्नः कालोऽनादेशे ॥२॥

यस्मिन् क्षणे मकरं गच्छति सूर्यः ततः प्रभृति षण्मासा उदगयनम् । यस्मिन् क्षणे सूर्याचन्द्रमसौ सह वसतः तत ऊर्ध्वं यस्मिन् क्षणे तयोरेव परमो विप्रकर्षः ततः प्राक्पूर्वपक्षः । ज्योतिश्शास्त्रे कर्मयोग्यं यदहरुक्तं तत्पुण्यमहः । तेषां द्वन्द्वसमासः । अन्वये तेषामितरेतरयोगमाह विभक्तिः । अतो येषु कर्मसु समुच्चितानामन्वयः सम्भवति तेषु समुच्चितानामेवाङ्गत्वं, येष्वसम्भवस्तेषु यथासम्भवं द्वयोरेकस्य वाऽन्वयः । ननु—सकृदुच्चरितस्य कथमनेकधाऽन्वयः । सर्वकर्मणामधिकृतत्वादर्थादावर्तते पदं, इतरेतरयोगविवक्षया च । समुच्चयसम्भवेऽपि ज्ज्योतिश्शास्त्रे निषिद्धमहस्तद्वर्जनीयं उदगयनपूर्वपक्षावनादृत्या पि दोषहेतुत्वात् । मध्यंदिनादूर्ध्वमहरावर्तनमित्याहुः । ततः प्राग्ग्रहणं घकाभावेऽप्यावृत्तिरस्ति अह्न इति विशिनष्टि । ननु—प्रातराहुतिं हुत्वा हविर्निर्वपेदित्यनेनैव सिद्धम् । न सिद्ध्यति पूर्वकालनिषेधपरत्वात्तस्य । अपि च 'सर्वमहः प्रातराहुतेस्स्थानम्' इतिवचनात् अपराह्णोऽपि स्यात् । काल इति यथाऽन्ये दर्शादयः काला अधिकारहेतवः तथाऽयमप्युक्तः कालोऽधिकारहेतुर्नाङ्गमात्रमिति गमयितुम् । अतोऽन्यकालेकृतमकृतमेव न विगुणमात्रम् । विशेषादेशस्य बलीयस्त्वेसिद्धे अनादेश इति शास्त्रा-

न्तरादेशस्य सङ्ग्रहणार्थम् । तत्र विरुद्धानां विकल्पः । यथा विवाहे सर्वकालत्वं, उपनयने च पञ्चमवर्षादि । अविरुद्धानां समुच्चयो यथोपनयने वसन्तादि, सर्वेषु च मुहूर्तादि । एवं सर्वत्र ॥ २ ॥

इस ग्रन्थ में जहां २ समय की कोई व्यवस्था नहीं की कई है कि अमुक समय अमुक कार्य्य करें-ऐसे स्थानों में सब कामों को उत्तरायण शुक्ल पक्ष, निर्दोष दिन में दोपहर के पहिले करना चाहिये ॥ २ ॥

अपवर्गे यथोत्साहं ब्राह्मणानाशयेत् ॥ ३ ॥

अधिकारप्रयोगे समाप्ते यथाश्रद्धं त्र्यवरान् ब्राह्मणान् भोजयेत ॥ ३ ॥

भा०-सब ही कर्मों की समाप्ति में यथा शक्ति एक, दो या तीन उपयुक्त ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ ३ ॥

यज्ञोपवीतम् ॥ ४ ॥

कर्माङ्गं स्यादिति शेषः । नित्ये विद्यमानेऽपि यज्ञोपवीतान्तरं प्रसङ्गात्सिद्धम् ॥ ४ ॥

भा०-आगे कहे जाने वाले कर्म्मों को यज्ञोपवीत धारण कर करे ॥ ४ ॥

सौत्रम् ॥ ५ ॥

तद्यज्ञोपवीतं कार्पाससूत्रकृतं रज्जुर्वासो वा । स्मृत्यन्तराच्छेषावगतिः ॥ ५ ॥

कौशं वा ॥ ६ ॥

कुशविकारः कौशम् ॥ ६ ॥

भा०-सूत या वस्त्र या कुशरज्जु में से जो जिस समय मिल सके उस समय उसी का यज्ञोपवीत बनाकर उससे काम लेवे ॥ ५ ॥ ६ ॥ ❀

❀उपवीत—जो बांये कन्धे से दहिने पार्श्व लटकता हो और दहिने कन्धे से वाम पार्श्व में लटकता हो उसे 'प्राचीनावीती' कहते हैं। और जो माला की भांति गले में पहना जावे उसे निवीत कहते हैं।

ग्रीवायां प्रतिमुच्य दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य यज्ञोपवीती भवति ॥ ७ ॥

तत्सौत्रं कौशं वा पाशाकृतिं कृत्वा ग्रीवायामासज्य दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य तस्याधस्तादबलम्बमानं कृत्वा यज्ञोपवीती भवति । विन्यासविशेषयुक्ते अस्मिन् द्रव्ये यज्ञोपवीतशब्दो वर्तते, तदर्थे द्रव्यं उपचारात् ॥ ७ ॥

भा॰—जनेऊ को दाहिने कन्धे पर रख के बांये कन्धे के बगल में लटकता पहिनने वाले को 'यज्ञोपवीती' कहते हैं ॥ ७ ॥

सव्यं प्राचीनावीती ॥ ८ ॥

ग्रीवायां प्रतिमुच्य सव्यं बाहुमुद्धृत्य प्राचीनावीती भवति । एतत् पित्र्ये, स्मृत्यन्तरात् । "उपासने गुरूणां वृद्धानामतिथीनां च होमे जप्यकर्मणि भोजने आचमने स्वाध्याये च यज्ञोपवीती स्यात् अन्येष्वप्येवंप्रकारेषु भवति" इति व्याप्त्यर्थं, गृह्यशास्त्रे विहितादन्यत्राप्येतदद्वयमङ्गमिति । निवीतिता नोक्ता, अस्मिंच्छास्त्रे निवीतिता कृत्यं नास्तीति , केचित्—'वायसान् वधकामः' इत्यत्र निवीतित्वमिच्छन्ति वधकामे श्येनयागे दर्शनात् । तदर्थं च "ग्रीवायां प्रतिमुच्य" इति सूत्रं विच्छिद्य "निवीती भवति" इत्यध्याहरन्ति ॥ ८ ॥

सर्वकर्मणामङ्गमाचमनं आदौ कर्तव्यम् । तदाह—

भा॰—इसी प्रकार जनेऊ को बांये कन्धे पर रख के दहिने बगलकक्ष के नीचे लटकते पहिनने वाले को 'प्राचीनावीती' कहते हैं । दैव कार्य्यों में 'यज्ञोपवीत' और पितृ कार्य्यों में प्राचीनावीत पहनना चाहिये ॥ ८ ॥

त्रिराचम्यापो द्विः परिमृजीत ॥ ९ ॥

उदकं त्रिरङ्गुष्ठमूलतलेन पीत्वाऽङ्गुष्ठमूलतलेना लोमप्रदेशाद्बहिः परित ओष्ठौ द्विः परिमृजीताद्भिः ॥ ९ ॥

पादावभ्युक्ष्य शिरोऽभ्युक्षेत् ॥ १० ॥

पादौ युगपदभिमुखं प्रोक्षेदद्भिः । पृथक्सूत्रकरणं पूर्वोत्तरसूत्राभ्यां वैलक्षण्यं गमयितुम् । वैलक्षण्यं च पाण्यवयवविशेषानपेक्षत्वम् ॥ १० ॥

भा०-सब ही कर्म्मों का अङ्ग; आचमन होता है अतएव-आचमन को कहते हैं। दोनों हाथों को धोकर उचित स्थान में बैठ कर तीन वार आचमन करके दो वार सारे शरीर का मार्जन करे। और दो वार ओंठ और अधर में लगा जल साफ करे उसके बाद दोनों पैर; एवं माथे पर जल छिड़के ॥ ९ ॥ १० ॥

इन्द्रियाण्यद्भिस्संस्पृशेत् ॥ ११ ॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी। अङ्गुष्ठप्रदेशनीभ्यां नासिके अङ्गुष्ठकनिष्ठकाभ्यां श्रोत्रे। अप इत्यधिकारात्सिद्धे अद्भिरिति प्रत्यङ्गमग्रहणार्थम्। इन्द्रियाणीति सामान्योक्तावपि पादयोः पृथग्ग्रहणात् पाय्वादीनामयोग्यत्वात्, मनसश्चाशक्यत्वात्, त्वचस्सर्वगतत्वात् सिद्धेः, जिह्वायाश्च पाने। पारिशेष्यात्त्रयाणामेव ॥ ११ ॥

भा०-और अँगूठा, अनामिका अँगुलियों से दोनों नेत्रों, अँगूठा, प्रदेशनी अँगुलियों से नाक के दोनों छिद्रों और अँगूठा, कनिष्ठिका अँगुलियों से दोनों कानों को स्पर्श करे। और भी अन्य इन्द्रियों का स्पर्श करे ॥ ११ ॥

अन्ततः प्रत्युपस्पृश्य शुचिर्भवति ॥ १२ ॥

प्रत्युपस्पृश्येत्युक्ते पूर्वोक्तानां प्रत्येकं स्यात् अतोऽन्तत इत्युक्तम्। उपस्पृश्येति सिद्धे प्रतीति पूर्वमप्युपस्पर्शनमस्तीति सूचयितुम्। पूर्वमुपस्पर्शनमपेक्ष्य प्रत्युपस्पर्शनं भवति। तच्च स्मृत्यन्तराद्गम्यते-'आमणिबन्धनात्पाणी प्रक्षाल्य' इति। तत्परामर्शे च तत्सहचरितानां "प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा शौचमारभेत, शुचौ देशे आसीनो दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा यज्ञोपवीती वाग्यतः, हृदयस्पृशः, अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिः, तीर्थेन पादौ प्रक्षाल्य" इत्येवमादीनामपि परामर्शस्सिद्धो भवतीति तैस्समुच्चयः। पादप्रभृति क्रियाविशेषाणां निरपेक्षश्रवणान्मुखमार्जनादीनां निवृत्तिः। शुचिरिति न केवलं कर्माङ्गभाव एवाचमनम्, अप्रायत्ये सति शुद्ध्यर्थमपि भवतीति वेदितव्यम्। भवतीति यज्ञोपवीती भवतीतिवत् ॥ १२ ॥

भा०—कर्म को आरम्भ करके या कर्म का आरम्भ न करने पर शयन करने के पश्चात् पुनः आचमन करके ही कर्म्म करने योग्य पवित्र होता है ॥ १२ ॥

आसनस्थानसंवेशनान्युदगग्रेषु दर्भेषु ॥ १३ ॥

कुर्यादिति शेषः । विध्युपदिष्टानि नार्थप्राप्तानि आसनादीनि, वचनस्यान्यथावैयर्थ्यात् ॥ १३ ॥

भा०—जिस किसी कर्म में बैठ कर जहां कर्म करना पड़े वहां उत्तराग्र कुशों पर ही आसन स्थान और बैठने का व्यवहार करे ॥ १३ ॥

प्राङ्मुखस्य प्रतीयात् ॥ १४ ॥

प्राङ्मुख इत्युक्ते कुर्यादित्यध्याहारे कर्तुरेव प्राङ्मुखत्वं स्यादिति सर्वस्यैव कर्मसम्बन्धिनः प्राङ्मुखत्वं विधातुं सम्बन्धमात्रवाचिनीं षष्ठीमाह यथा चौले मातुः । वाक्यशेषात्सिद्धे प्रतीयादिति मधुपर्के दातुश्चौले नापितस्य प्रत्यङ्मुखमियात् गच्छेदित्यर्थः ॥ १४ ॥

भा०—और जहां साफ साफ यह विधान न हो कि अमुक दिशा की ओर मुखकर बैठे वहां पूर्वाभिमुख बैठ या खड़े होकर कर्म करना समझो ॥ १४ ॥

पश्चादग्नेर्यत्र होमस्स्यात् ॥ १५ ॥

यस्मिन् प्रदेशे होमो विद्यते तत्र प्रधानमङ्गानि च पश्चादग्नेरुपविश्य कुर्यात् । स्यादिति व्याप्त्यर्थं भवतीतिवत् ॥ १५ ॥

भा०—और जहां होम करने का विधान हो परन्तु किधर होके होम करे यह नहीं कहा है। वहां होमाग्नि के पश्चिम दिशा में बैठकर कर्म्म करे ॥ १५ ॥

सहशिरसं स्नानशब्दे ॥ १६ ॥

प्रतीयादिति शेषः, स्नातामहतेन स्नाप्य कुमारं इत्यादौ । स्नान इत्येव सिद्धे शब्द इति 'गृह्यात्मानमभिषिञ्चेत्' इत्यत्र शिरस्यभिषेकार्थम् । इतरथा सेकमात्रमिदं न स्नानमिति न शिरसि स्यात् । स्नाने स्नानतुल्यवाचिनि शब्दे इति सूत्रार्थः ॥ १६ ॥

भा०—और जहां 'स्नान' करके कर्म्म करने का विधान हो वहां शिर सहित जल से नहा कर समझना ॥ १६ ॥

दक्षिणेन पाणिना कृत्यमनादेशे ॥ १७ ॥

कुर्यादित्यध्याहारात्सिद्धे कृत्यमिति गृह्योक्तादन्यदपि यत्कृत्यं तदपि दक्षिणेनैव हस्तेन कुर्यादित्येवमर्थम् । आदेशबलीयस्त्वात्सिद्धे अनादेश इति पदार्थस्वभावादेशेऽपि निवृत्त्यर्थम्, यथा परिदध्यादित्यादौ द्वयोः पाण्योः ॥ १७ ॥

भा०—और जहां यह न लिखा हो कि दहिने या बांये हाथ से कर्म्म करे वहां दाहिने हाथ से कर्म्म करना समझना ॥ १७ ॥

मन्त्रान्तमव्यक्तं परस्यादिग्रहणेन विद्यात् ॥ १८ ॥

मन्त्रान्तं, अव्यक्तं च विनियोगतः परिमाणतश्च । परस्येत्यस्य-काङ्क्षावशात् द्वावर्थौ, उत्तरस्य मन्त्रस्येत्येकः, प्रधानस्य मन्त्र-बोध्यस्यार्थस्येति द्वितीयः । आदिश्च ग्रहणं चादिग्रहणम् । यथा-सङ्ख्येनान्वयः । एष सूत्रार्थः । मन्त्रान्तमुत्तरस्यादिना विद्यादव्यक्तं विनियोगतः परिमाणतश्च अर्थवशेन विनियुक्तं परिमाणयुक्तं च विद्यादिति । अविनियुक्तो हि मन्त्रोऽध्ययनसंस्कृतः कार्यविशेष-सम्बन्धाकाङ्क्षः कर्मविशेषार्थानां मन्त्राणां सन्निधावाम्नायमानस्त-त्कर्मशेषभावं प्रतिपद्यते, सन्निधिविशेषादपर्यवसानाच्च । तस्मिन्नपि कर्मणि यत्पदार्थप्रकाशनसमर्थो यस्य तस्यैव शेषः, सामर्थ्यविशेषात् । यस्त्वतत्प्रकाशकः स तत्प्रकाशक एव जपतया आशीर्वादतया वोप-युज्यते । आकाङ्क्षादिवशाचेयत्तापरिच्छेदो मन्त्रस्य ॥ ननु परस्य ग्रहणेऽनेनैव परिमाणस्याप्युक्तत्वात् अन्तमादीत्यनेन किम्! उच्यते— द्वयोर्मन्त्रयोर्मध्यगतस्य यस्य पदस्याभिधानकोऽन्वयो न केनचिदव-गम्यते, तस्यावश्यमेकेनान्वयः कल्प्यः, अन्यथा तस्यानर्थक्यं स्यात् । यस्य वा द्वाभ्यामपि केनापि प्रकारेणान्वयो दृश्यते तस्याप्येकेनैवान्वयः आकाङ्क्षापूर्तेरेकत्वाच्चावगम्यते । एतदुक्तं भवति—उत्तरमन्त्रादेः प्राक् पूर्व एव मन्त्रोऽनन्वयि यत्किञ्चित्पदमित्येकोऽर्थः, उत्तरमन्त्रादेः

प्रागेव पूर्वमन्त्रो नोत्तरादिसहित इति द्वितीयः । मध्यमं पदं किं पूर्वेण सम्बध्यते उतोत्तरेणेति सन्देहे कल्पनालाघवाद्विशेषाध्यवसायः । अस्यार्थस्य न्यायसिद्धेर्न दोषः, नैयायिकत्वात् सूत्रस्य । वाक्यशेषादिसिद्धे विद्यादिति न स्वरुच्या कल्पयेत्, न्यायसिद्धमेव जानीयादित्येवमर्थम् ॥ १८ ॥

भा०–जिस मन्त्रके अन्त का भाग ऐसा स्पष्ट न हो जिससे विनियोग और उसका परिमाण–मालूम हो। ऐसी दशा में उत्तर मन्त्र की आदि को लेकर समझे या प्रधान मन्त्र के अर्थ को समझ कर तदनुसार कार्य्य करे ॥ १८ ॥

स्वाहान्ता मन्त्रा होमेषु ॥ १९ ॥

ये पाठैर्न स्वाहान्ताः तेऽपि स्वाहान्ताः कार्याः । 'स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहाऽग्नये कव्यवाहनाय' इत्यत्र न स्वाहान्ताः, आद्येनैव कृतार्थत्वात्, 'पुरस्तात्स्वाहाकृतयो वा अन्ये देवा उपरिष्टात्स्वाहाकृतयोऽन्ये' ❀ इति श्रुतेः । अधिकारात्सिद्धे मन्त्रा इति व्याप्त्यर्थम् ॥ १९ ॥

भा०–होम करने के मन्त्रों में से जिन मन्त्रों में "स्वाहा" शब्द का प्रयोग–मन्त्र पाठ में न हो तौ भी ऐसे मन्त्रों में "स्वाहा" शब्द को जोड़कर होम करे ॥ १९ ॥

पाकयज्ञ इत्याख्या यः कश्चैकाग्नौ ॥ २० ॥

संज्ञा व्यवहारार्था । एकाग्निः गृह्याग्निः । एकाग्निग्रहणं अन्याग्निसाध्यानां संज्ञानिवृत्त्यर्थम् । यः कश्चेति 'सप्त पाकयज्ञसंस्थाः' इति दर्शनात् तद्व्यतिरेकार्थं शास्त्रान्तरोक्तसङ्ग्रहार्थं च ॥ २० ॥

गृह्य अग्नि में साध्य कर्म्मों की "पाक यज्ञ" संज्ञा है ॥ २० ॥

तत्रर्त्विक् ब्रह्मा सायंप्रातर्होमवर्जम् ॥ २१ ॥

तत्र तस्मिन्नेव पाकयज्ञे नान्यत्र । अतो मथिते लौकिके वा न ब्रह्मा । ऋत्विगिति 'आर्षेयोऽनूचानः' इत्याद्यृत्विग्गुणनियमार्थम् ॥ २१ ॥

❀ तै. सं. ३-१-५.

भा०–उस "पाक यज्ञ" में सायं प्रातर्होम कर्म्म को छोड़कर अन्य पाक यज्ञों में ऋत्विग्ही ब्रह्मा होते हैं ॥ २१ ॥

स्वयं हौत्रम् ॥ २२ ॥

सायंप्रातर्होमवर्जमित्यनुवर्त्तते, इतरथा सूत्रानर्थक्यं स्यात् । तथा हि सर्वहोमेषु स्वामिनो होमकर्तृत्वं न विधेयं नित्यप्राप्तत्वात् । सायंप्रातर्होमे स्वामिनोऽन्यस्यापि कर्तृत्वाभ्यनुज्ञानार्थं सूत्रं, तदधिकारार्थमेव हि ब्रह्मासनमनुक्त्वैतदुक्तम् ॥ २२ ॥

भा०–नित्य होम कर्म में स्वयं यजमान का ही अधिकार है ॥ २२ ॥

दक्षिणतोऽग्नेरुदङ्मुखस्तूष्णीमास्ते ब्रह्माऽऽहोमात्प्रागग्रेषु ॥२३

अग्नेर्दक्षिणतः न होतुः । तूष्णीं वाग्यतः । आहोमात् प्रयोगसमाप्तेः ॥ २३ ॥

भा०–अग्नि के दक्षिण भाग में ब्रह्मा उत्तर मुंह होकर होमकी समाप्ति तक चुपचाप मौन होकर पूर्वाग्र कुशों पर बैठें ॥ २३ ॥

कामं त्वधियज्ञं व्याहरेत् ॥ २४ ॥

यज्ञोपकार्यन्तरितादि ब्रह्मा ब्रूयात् । अत एव कर्मविदेव ब्रह्मा । कामं त्विति लौकिकस्यापि कर्मोपकारिणो व्याहरणार्थम् ॥ २४ ॥

भा०–परन्तु यज्ञ सम्बन्धी बातें आ पड़ने पर ब्रह्मा बोल सकते हैं ॥ २४ ॥

अयज्ञीयां वा व्याहृत्य महाव्याहृतीर्जपेत् ॥ २५ ॥

वाशब्दात् यज्ञियामप्यन्यथासिद्धाम् । जपेत् मनसा । व्याहृतय एव महाव्याहृतयः । "इदं विष्णुः" इति वा ऋचम् ॥ २५ ॥

भा०–यदि यज्ञ के अतिरिक्त लौकिक विषयों में बात करें तो इसका प्रायश्चित्त स्वरूप व्याहृतियों या "इदं विष्णुः" ऋचा का जप करने से पवित्र होंगे ॥ २५ ॥

हौत्रब्रह्मत्वे स्वयं कुर्वन् ब्रह्मासनमुपविश्य छत्रमुत्तरासङ्गं कमण्डलुं वा तत्र कृत्वाऽथान्यत्कुर्यात् ॥ २६ ॥

आपत्कल्पोऽयम् । उत्तरासङ्गं उत्तरीयं वासः । अथान्यदिति

ब्रह्मोपवेशनात्पूर्वं निर्वृत्तं यत्कर्म तदनन्तरं विहितं यदवशिष्टं तदित्यर्थः। अत एव न कर्मादौ ब्रह्मोपवेशनम्। क्व तर्हि ? 'इदं भूमेः' इत्यस्यानन्तरमेव वक्ष्यामः ॥ २६ ॥

भा०—यदि होतृ कार्य और ब्रह्मा का काम एक ही व्यक्ति को करना पड़े तो ब्रह्मा के लिये डाले हुये आसन पर छाता या जल भरा कमण्डल रख के उसी प्रकार प्रदक्षिणा आदि पूर्वक अपने होता के आसन पर वापिस आवे और अग्निहोत्रादि साधारण कार्य भूमि जपादि करे ॥ २६ ॥

अव्यावृत्तिं यज्ञांगैरव्यवायं चेच्छेत् ॥ २७ ॥

होमाङ्गैस्सहाग्नेः पराङ्मुखो न भवेत्, अन्तरा च न गच्छेदित्यर्थः। कुर्यादित्यध्याहारात्सिद्धे इच्छेदिति, यदि प्रमादाद्व्यावृत्तिं व्यवायं वा कुर्यात् तदा पुनः प्रतिमुखः स्यात्, प्रत्यागच्छेदित्येवमर्थम्। पाकयज्ञसाधारणमिदं सूत्रम्। एवमुक्ता परिभाषा ॥ २७ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमस्य पटलस्य
प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥ १ ॥

भा०—होम 'कार्य्यों' को प्रमाद से या किसी कारण न छोड़े या वीच में त्याग न करे। यदि कारणवश छोड़ना भी पड़े तो फिर कार्यारम्भ करे ॥ २७ ॥ इति

द्राह्यायणगृह्यसूत्र प्रथम पटल के पहिले खण्ड का
अनुवाद समाप्त हुआ ॥ १ ॥

पूर्वे भागे वेश्मनो गोमयेनोपलिप्य तस्य मध्यदेशे लक्षणं कुर्यात् ॥ १ ॥

गृहस्याभिमुखे गृहैकदेशे भागे पूर्वोपलिप्तेऽपि स्वयं गोशकृतोपलिप्य उपलिप्तस्य मध्यदेशे लक्षणं कुर्यात्। लक्षणस्य स्वरूपमन्यतोऽवगन्तव्यम्। पांसुभिः स्थण्डिलं कुर्यादित्यर्थः ॥ १ ॥

भा०—घर के पूर्व भाग में जहां पाक यज्ञ करना हो वहाँ गोवर से लीप कर लिपी हुई जगह के मध्य भाग में यज्ञ वेदी बनावे ॥ १ ॥

दक्षिणतः प्राचीं लेखामुल्लिख्य ॥ २ ॥

स्थण्डिलस्य दक्षिणापरकोणादारभ्य प्रागपवर्गां रेखामुल्लिखेत् ॥२॥

भा०–वेदी के दक्षिण भाग में पश्चिम से पूर्व को रेखा खैंचे ॥२॥

तदारम्भादुदीचीं तदवसानात्प्राचीं तिस्रो मध्ये प्राचीः ॥३॥

पश्चिमरेखारम्भादुत्तराः तिस्रः । कुतः 'अपित्र्यं सर्वं प्रागपवर्ग-मुदगपवर्गं वा' इति स्मृतिबाहुल्यात् । एवं सर्वत्राम्नादेशे ॥ ३ ॥

भा०–और उस रेखा से उत्तर क्रम से तीन रेखा करे। अर्थात् दक्षिण रेखा से उत्तर मध्य भाग में क्रम से एक के बाद दूसरी, तीसरी रेखा करे ॥ ३ ॥

तदभ्युक्ष्य ॥ ४ ॥

उल्लिखितं स्थण्डिलमद्भिरभ्युक्ष्य ॥ ४ ॥

भा०–और उस वेदी को जल से अभ्युक्षण करे ॥ ४ ॥

अग्निमुपसमाधाय ॥ ५ ॥

स्थण्डिलस्य मध्ये अग्निमसंमुखमभिमुखं निधाय। उपेत्युपयोगाय यत्र यत्र शास्त्रेणाहोमार्थोऽप्यग्निर्निधीयते तत्र तत्रोपलेपनाद्येवंनिधानान्तं कुर्यादित्येवमर्थं, यथा सर्पबलौ। इतरथा सर्वत्रैतद्धोमेषु कुर्यात्' इति वचनात् अहोमार्थे न स्यात् ॥ ५ ॥

भा०–और वेदी के बीच में अग्नि का आधान करके तब होम करे यह साधारण विधि सब होम यज्ञ में करना चाहिये ॥ ५ ॥

इमं स्तोममिति परिसमूह्य तृचेन ॥ ६ ॥

निधीयमानस्याग्नेः प्रकीर्णान् कणान् समन्तत एकीभावं प्रापय्य प्रत्यृचं परिसमूहनं प्रागुपक्रममुदगपवर्गं कुर्यात्, निराकाङ्क्षत्वादृचाम्। अस्य विनियोगमात्रपरत्वान्नार्थैक्यकल्पनायां प्रभुत्वम् ॥ ६ ॥

भा०–उसके बाद "इमं स्तोमं०" इत्यादि तीन ऋचाओं से यज्ञ वेदी का परिसमूहन करे ॥ ६ ॥

पश्चादग्नेर्भूमौ न्यञ्चौ पाणी कृत्वेदं भूमेरिति ॥ ७ ॥

अग्नेरनन्तरमेव पश्चात्तृणादिभिस्सहितौ भूमिगताववाङ्मुखौ हस्तौ कृत्वा 'इदं भूमेः' इति जपेत्। 'अन्येषां विन्दते वसु, अन्येषां विन्दते धनम्, इत्यनयोस्तुल्यार्थत्वात् विकल्पेन मन्त्रान्तरवम् ॥ ७॥

तयोर्नियममाह—

भा०—इसके अनन्तर अग्नि के पश्चिम भाग में तृण आदि सहित भूमि पर दोनो हाथ औंधे कर के "इदं भूमेः" मन्त्र का जप करे ॥७॥

वस्वन्तं रात्रौ ॥ ८ ॥

रात्रिकाले विहितं यद्रात्रौ क्रियते तत्र वस्वन्तमेव । अनन्तरं ब्रह्मोपवेशनम्। कुतः ? अग्निनिधानात्पूर्वं तावन्नोपवेशनं 'दक्षिणतोऽग्नेः इति वचनात्। परतोऽपि 'उपसमाधायसमूह्य न्यञ्चौ पाणी कृत्वेदं भूमेः इति क्त्वाप्रत्ययेन समानकर्तृकत्वस्योक्तत्वादवान्तरप्रयोगैकवाक्यत्वावगतेर्बाधान्नोपवेशनम्। इदानीं तु विरोधाभावाद्वक्ष्यमाणस्य ब्रह्मापेक्षत्वादुपवेशनम्। पूर्वोक्तानां सूत्रैक्येपि सुखबोधार्थं सूत्रावच्छेदः कृतः ॥८॥

भा०—और जो कृत्य रात्रि में करना हो तो "अन्येषां विन्दते वसु" पढ़े और नहीं तो "अन्येषां विन्दते धनम्" यदि (दिन में करना हो तो) तब ब्रह्मा का उपवेशन करे ॥ ८ ॥

पश्चाद्दर्भानास्तीर्य दक्षिणतः प्राचीं प्रकर्षेदुत्तरतश्च ॥ ९ ॥

अग्नेः पश्चात्। प्रागग्रान् दर्भान् निरन्तरानास्थण्डिलमुदगपवर्गान् प्रकीर्य दक्षिणतः प्रकीर्णानग्रेषु गृहीत्वा प्राचीं प्रकृष्य तथोत्तरतश्च प्रकर्षेत्। यथाऽग्नेः पुरस्तादग्राणि सङ्गतानि न स्युः अयमेकः कल्पः ॥९॥

अपकृष्य वा ॥ १० ॥

पश्चात्स्तरणमात्रमेवैकः कल्पः ॥ १० ॥

पूर्वोपक्रमं प्रदक्षिणमग्निं स्तृणुयान्मूलान्यग्रैश्छादयंस्त्रिवृतं पञ्चवृतं वा ॥ ११ ॥

अग्नेः पुरस्तात् पूर्वं ततो दक्षिणतस्तत उत्तरतस्ततः पश्चात्। ननूत्तरतस्समापनीयं 'प्रदक्षिणम्' इति वचनात्। न, 'मूलान्यग्रैश्छादयन्' इति वचनात्। उदगपवर्गे हि मूलैरग्राणि छादितानिस्युः । ननु

अग्राण्युत्क्षिप्य किमिति न स्तरणं, 'छादयन्, स्तृणुयात्' इति स्तीर्यमाणावस्थायामेव स्तीर्यमाणैश्छादनोपदेशात्। एवं तर्हि 'मूलान्यग्रैश्छादयन्' इत्यनेन सिद्धत्वात् पूर्वोपक्रमं प्रदक्षिणम्' इत्यनर्थकम्। न, अन्यदपि यत् प्रतिदिशं तत्पूर्वोपक्रमं प्रदक्षिणमिति ज्ञापनार्थं, यथा 'प्रतिदिशमुपक्षिम्पेत्' इति। अत्रापि स्पष्टीकरणार्थत्वात् अत्रैवोक्तम्। अत्र तु 'प्रथमं दक्षिणतस्तत उत्तरतः' इत्यपि प्रदक्षिणशब्दस्यार्थोऽवगन्तुं शक्यते। इदं स्तरणं त्रिः कृत्वः पञ्चकृत्वो वा। पूर्वसूत्राभ्यां विहिते सकृत्सकृदेव। पितृयज्ञेष्वाद्यं स्तरणम्, अन्वष्टक्ये द्वितीयम्, इतरत्र तृतीयमित्युपदेशः। तृतीये पञ्च वृतपक्षस्य प्रजाकामपशुकामयोर्निवेशः॥ ११॥

भा०-समित् डालने आदि द्वारा अग्नि जलाकर उस अग्नि के चारों ओर कुशों से इस क्रम से ढाके कि पहिले पूर्व दिशा में तव दक्षिण में फिर उत्तर में और तव पश्चिम में सव ही ओर तीन या पांच वार कुशा से आच्छादन करे किन्तु ऐसी युक्ति से जिसमें दो, तीन या अधिक कुशा एक स्थान में मिल न जावें और सव ही कुशाओं का अग्रभाग के द्वारा उनका जड़ ढका रहे॥ ९॥ १०॥ ११॥

उपविश्य दर्भाग्रे प्रादेशमात्रे प्रच्छिनत्ति न नखेन पवित्रे स्थो वैष्णव्याविति॥ १२॥

उपविश्येतीतः परं दर्भासनार्थम्। प्रच्छिनत्ति न पाणिना। 'ओषधिमन्तर्धाय' इति गृह्यान्तरे॥ १२॥

अद्भिरुन्मृज्य विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति॥ १३॥

उत् ऊर्ध्वम्॥ १३॥

भा०-इसके वाद पहिले से इकट्ठा किये हुये कुशाओं में से प्रादेश प्रमाण दो कुशाओं को लेकर "पवित्रेस्थो" आदि मन्त्र से ओषधि के वीचो वीच छेदन करे। उसके पश्चात् "विष्णोर्मनसा०" मन्त्र से उस को जल में धो कर॥ १२॥ १३॥

उदगग्रे अङ्गुष्ठाभ्यामनामिकाभ्यां च सङ्गृह्य त्रिराज्यमुत्पुनाति "देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण" "वसोस्सूर्यस्य रश्मिभिरिति॥ १४॥

मन्त्रस्यापि त्रिरावृत्तिः, प्रदेशान्तरे 'द्विस्तूष्णीम्' इति; यन्त्रान्तरात्। उत्पुनाति प्राचीमूर्ध्वं क्षिपति। अच्छिद्रेण पवित्रेणेति संश्लिष्टयोस्समुदायमाह ॥ १४ ॥

भा०—उत्तराग्र करके आज्योत्पवन करे। अर्थात् आज्य में पड़े हुए तृण आदि को निकाल कर पूर्व की ओर ऊपर को फेंक देवे। और आज्य के उत्पवन करते समय दोनों पवित्र को अंगूठा और अनामिका अंगुली से पकड़ कर एकवार "देवस्त्वा०" इत्यादि यजू मंत्र से और दोबार विना मन्त्र के उत्पवन करे ॥ १४ ॥

अभ्युक्ष्यैते अग्नावनुप्रहरेत् । १५ ।

अद्भिरभ्युक्ष्य पवित्रे उदगग्रे अग्नौ प्रक्षिपेत्। अन्विति उत्पवनेऽनुगते उदगग्रे इत्यर्थः ॥ १५ ॥

आज्यमधिश्रित्योत्तरतः कुर्यात् ॥ १६ ॥

अग्नेरुत्तरे भागे स्थाल्या सहाज्यमुपनिधाय कुर्यात्। किं कुर्यात्? शास्त्रान्तराद्गम्यते—द्विरुल्मुकेनाभिज्वाल्य द्वे दर्भाग्रे प्रक्षिप्य त्रिरुल्मुकेन प्रदक्षिणं परिहृत्य उत्तरतो बर्हिषि निदध्यादित्यर्थः ॥१६॥

भा०—आज्य उत्पवन के बाद उन दो पवित्रों को जल में धोकर अग्नि में फेंक देवे। इसके बाद अग्नि के उत्तर भाग में जलते हुये अंगारे पर पहिले पवित्र आज्यपात्र को रक्खे तब चरुस्थाली को रक्खे। १५ ॥ १६ ॥

दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेनाग्निमदितेऽनुमन्यस्वेत्युदकाञ्जलिं प्रसिञ्चेत् ॥ १७ ॥

दक्षिणेन जानुना भूमिगतो ब्रह्माग्न्योरन्तरेण उदकपूर्णमञ्जलिमवसिञ्चेत् ॥ १७ ॥

भा०—पूर्वोक्त (१-२७-२८) अग्नि का आधान तथा परिसमूहन करके दहिना जानु भूमि पर टेक कर "अदिते०" इत्यादि मंत्र से अग्नि के दक्षिण भाग में उदकाञ्जलि सींचे ॥ १७ ॥

अनुमतेऽनुमन्यस्वेति पश्चात् सरस्वत्यनुमन्यस्वेत्युत्तरतः॥१८॥

होमाङ्गानामप्युत्तरतः । रेखावदञ्जलिसेकः, दृष्टानुगुण्याददृष्टे कल्पनात् यतः ॥ १८ ॥

भा०–"अनुमते०" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम भाग में दूसरी उदकाञ्जलि सींचे। और "सरस्वत्यनु०" मन्त्र से अग्नि के उत्तरभाग में तीसरी उदकाञ्जलि सींचे ॥ १८ ॥

देव सवितः प्रसुवेति प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्षेदभिपरिहरन् हव्यम् ॥ १६ ॥

प्रसिञ्चेदिति प्रकृते पर्युक्षेदिति एतावत एव पर्युक्षसंज्ञार्थं 'पर्युक्षणवर्जम्' इत्यत्र होमाङ्ग' सर्वमन्तर्भावयन्। प्रागुपक्रममुदकाञ्जलिं पर्युक्षेत् ॥ १६ ॥

भा०–और "देव सवितः०" मन्त्र से अग्नि की प्रदक्षिणा कर जल धारा गेरे ॥ १६ ॥

सकृत्त्रिर्वा ॥ २० ॥

सकृन्मन्त्रमुक्त्वा त्रिर्वा पर्युक्षेत् ॥ २० ॥

भा०–एक या तीन वार मन्त्र पढ़कर पर्युक्षण करे ॥ २० ॥

समिध आधाय ॥ २१ ॥

औदुम्बराः खादिराः पालाशा वा तदभावे यज्ञियाः पञ्चदश समिधोऽग्नावाधाय एकामुत्तरतो बर्हिषि निदध्यादित्यध्याहारश्शास्त्रान्तरात् अनन्तरमग्नेरर्चनमाचारात् ॥ २१ ॥

भा०–इसके पश्चात् गूलर, खैर, पलाश या इनके अभावमें यज्ञिय काष्ठों में से किसी काष्ठ की १५ समिधा को अग्नि में डालकर एक समिधा के उत्तर भाग में वर्हिः कुश को धरे ॥ २१ ॥

प्रपदं जपित्वोपताम्य कल्याणं ध्यायन् वैरूपाक्षमारभ्योच्छ्वसेत् ॥ २२ ॥

'तपश्च तेजश्च' इत्यारभ्य 'ब्रह्मणः पुत्राय नमः' इत्येवमन्तस्य प्रपदशब्दो वाचकः। जपित्वेति जपन्नित्यर्थः, 'विरूपाक्षोऽसि' इत्यस्य

प्रपदमध्यपातित्वात् पौर्वापर्यानुपपत्तेः। कल्याणशब्दोऽपवर्गवाचकः। निरुच्छ्वासो भूत्वा प्रपदं जपन् 'भूर्भुवस्स्वरोम्' इत्योङ्कारे परमात्मज्ञानं मे भूयादिति ध्यायन् यथासामर्थ्यमोङ्कारं स्रावयित्वा 'विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिः' इत्युच्छ्वसेदित्यर्थः। नित्येष्वेवम् ॥ २२ ॥ काम्येष्वाह—

भा०—"तपश्च तेजश्च"—यहां से लेकर "ब्रह्मणः पुत्राय नमः"—यहाँ तक को "प्रपद" कहते हैं "विरूपाक्षोऽसि" इसका पाठ प्रपद वाचक मन्त्रों के बीच में पड़ा है। और कल्याण-शब्द मोक्ष का वाचक है। श्वास को रोक कर प्रपद का जप करता हुआ "भूर्भुवस्स्वरोम्" का ध्यान करता हुआ परमात्मा का ज्ञान मुझे हो-इसका ध्यान करता हुआ "विरूपाक्षोऽसिदन्ताञ्जिः" जपकर श्वास लेवे ॥ २२ ॥

प्रतिकामं काम्येषु ॥ २३ ॥

काम्यग्रहणमुपलक्षणं अज्ञातसाध्यविशेषवतां कर्मणाम्। तेषु विशेषमेव परामृश्य इदं मे भूयादिति ध्यायन्नित्यर्थः ॥ २३ ॥

भा०—यह नित्य कर्म्मों का विधि है परन्तु काम्य कर्मों में विशेषता है जिसको अगले सूत्र में कहते हैं—

काम्य कर्म्मों में जिस कार्य की सिद्धि की कामना रखता हुआ कर्म करे उस कामना का ध्यान करता हुआ पूर्वोक्त प्रकार से प्रपद का जप करे ॥ २३ ॥

सर्वत्रैतद्धोमेषु कुर्यात् ॥ २४ ॥

सर्वत्रेति व्याप्त्यर्थम्। एतत् उपलेपनादि प्रपदान्तं सर्वं पदार्थजातं सर्वत्र होमात्मके कर्मणि तत्तद्विशेषेभ्यः प्रागेव कुर्यात्। यानि तु धृतेऽग्नौ तस्मिन्नेव देशे क्रियन्ते तेष्वर्थलोपादग्न्युपसमाधानान्तस्य निवृत्तिः ॥ २४ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमपटलस्य
द्वितीयः खण्डः ॥ १ । २ ॥

भा०—सब ही होम कर्म्मों में उक्त (उप लेपनादि १–२२ सू० तक) कर्मों को करके अन्य कार्य करे ॥ २४ ॥ इति

द्राह्यायणगृह्यसूत्र प्रथम पटल के दूसरे खण्ड का
भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ १ ॥ २ ॥

ब्रह्मचारी वेदमधीत्योपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातो दारान् कुर्वीत ॥ १ ॥

ब्रह्म वेदः, वेदाध्ययनार्थानि गोदानादीनि व्रतान्यग्नीन्धनादीनि च स्मृतिकारैरुक्तानि लक्षणया ब्रह्मेत्युच्यन्ते। तान्यनुतिष्ठन्नेकां शाखामधीत्याध्ययनप्रयोगमर्थनिश्चयपर्यन्तं षडङ्गं परिसमाप्य उप गुरुसमीपं निष्पाद्य स्वयं गुरवेऽभिलषितद्रव्यमार्जयित्वा तत् गुरुसमीपमाहृत्य गुरवे आचार्याय दत्वा तेनैव गुरुणा त्वं विवाहं स्नानं च कुर्वित्यनुज्ञातस्सन् दारान् कुर्वीत भार्यां कुर्वीत यथाऽऽत्मानं प्रति भार्या भवति तथा कुमारीं संस्कुर्यादित्यर्थः। दारानिति बहुत्वपुंस्त्वे अविवक्षते। आविष्टलिङ्गवचनत्वात्। एवं वृत्त्यर्थेऽध्यापने। अदृष्टार्थे तु गुरुदक्षिणामदत्वाप्यनुज्ञामात्रादेव विवाहः। 'सहस्रं श्वेतं चाश्वं प्रदायानुज्ञातो वा' इति श्रुतेः। तदर्थं चोपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातो वेति वाशब्दं केचिदध्याहरन्ति। दक्षिणात्वान्नोदकपूर्वमिदं दानम्॥

अपरा व्याख्या वाशब्दाध्याहारेण—ब्रह्मचारी वेदं वाऽधीत्येति द्वादशवार्षिकं षट्त्रिंशदाब्दिकं तदर्धिकं पादिकं वा ब्रह्मचारी व्रतं ब्रह्म तच्चरित्वा वेदं सकलमनधीत्यापि विवाहः। अथवा व्रतं चरित्वा वेदं सकलमधीत्य विवाह इति। अस्मिन् व्याख्याने नार्थावबोधपर्यन्तमध्ययनम्। केचिदाहुः—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैविद्यकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

इत्यस्मिन्मानवे श्लोके वेदत्रयार्थत्वेन षट्त्रिंशदादेरुक्तत्वात्, 'वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि' इति चानेनैवोक्तत्वात्, वेदह्रासवशात् काले ह्रासोऽप्युक्त एवेति त्रिवर्षादिचरणमप्यनुज्ञातमेवेति। तद्युक्तमयुक्तं वेति विचारणीयम्। ब्रह्मचारीत्यस्यापरा व्याख्या—वेदव्रतानि चत्वारि गोदानं व्रातिकं आदित्यव्रतं माहानाम्निकमित्येतानि, गोदानं व्रातिकं आदित्यव्रतं माहानाम्निकमौपनिषदमित्येतानि वा ब्रह्म तच्चरित्वा विवाह इति। अस्यार्थस्य न्याय्यमूलत्वं केचिदाहुः—ब्रह्मचारिव्रतानि पुरुषसंस्कारार्थानि नाध्ययनाङ्गानि पुरुषोद्देशेन विधानात्।

अतस्तद्विधिपर्यवसाननिबन्धनोऽयं व्रतस्नानोपदेशः । अध्ययनविधिरपि न विचारपर्यन्तः,रागत एव तत्सिद्धेः। अतस्तन्निबन्धनो वेदस्नानोपदेश इति । तदिदं मीमांसकैर्नेष्यते । वाक्यशेषात्सिद्धे कुर्वीतेति नान्दीमुखादेरुपसङ्ग्रहणार्थम् ॥ १ ॥

भा०–ब्रह्मचारी अर्थ पाठ सहित साङ्गवेद को पढ़के आचार्य को इच्छित दक्षिणा द्रव्य लाकर देकर और उनकी आज्ञा (अब तुम समावर्त्तन करके अपने अनुकूल कुमारी से विवाह करो) से सवर्णा कुमारी कन्या से समावर्त्तन पूर्वक विवाह करे ॥ १ ॥

आप्लवनं च ॥ २ ॥

उपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातः कुर्वीत इत्यस्यानुकर्षणार्थश्चकारः । आप्लवनं स्नानं समावर्तनम् दाराप्लवने इति वक्तव्ये पृथग्ग्रहणं पृथक्प्रयोगार्थम् । अत एव कालोऽपि भिद्यते । व्युत्क्रमस्तु दाराधिगन्तुरेवाप्लवनं न नैष्ठिकस्य इत्येवमर्थम् । इतरथा ह्यध्ययनपरिसमाप्तिनिमित्तमाप्लवनमित्युपशङ्क्येत ॥ २ ॥

भा०–और तब समावर्त्तन संस्कार करे ॥ २ ॥

तयोराप्लवनं पूर्वम् ॥ ३ ॥

जायापत्योर्विवाहात्पूर्वमाप्लवनं कर्तव्यं, तत् पुरुषस्य मन्त्रक्रमानुसारेण परस्ताद्वक्ष्यते 'आप्लवने पुरस्तात्'इत्यारभ्य ॥३॥ स्त्रियास्त्वाह—

भा०–कन्या और पति विवाह के पहिले स्नान करे । पति तो मन्त्र पूर्वक स्नान करे और कन्या विना मन्त्र के ही ॥ ३ ॥

मन्त्राभिवादात्तु पाणिग्रहणस्य पूर्वं व्याख्यातम् ।४।

वध्वाः पाणिर्गृह्यतेऽस्मिन्निति पाणिग्रहणं विवाहः । विवाहस्य काले वध्वा आप्लवनं मन्त्रलिङ्गानुसारेण कर्तव्यमिति सूत्रार्थः । तुशब्दो विशेषणार्थः । यद्यप्याप्लवनं स्नानं प्रसिद्धं,तथाऽपीह वध्वा उपस्थाप्लवनमात्रे आप्लवनशब्दः मन्त्राभिवादादिति । पूर्वमिति यत् पूर्वमाप्लवनं पूर्वमन्त्रद्योतितसुरासाधनकं तदेवोत्तरमन्त्राभ्यामपि कर्तव्यमित्येवमर्थम् अत एव मध्वाज्यशब्दाभ्यामपि सुरैव लक्षणयोच्यते सुरेतिचात्र पिष्टसयुक्तंमुदकं लक्षणया पैष्टीसुरासादृश्यादुच्यते,

ब्रह्मचारी वेदमधीत्योपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातो दारान् कुर्वीत ॥ १ ॥

ब्रह्म वेदः, वेदाध्ययनार्थानि गोदानादीनि व्रतान्यग्नीन्धनादीनि च स्मृतिकारैरुक्तानि लक्षणया ब्रह्मेत्युच्यन्ते। तान्यनुतिष्ठन्नेकां शाखामधीत्याध्ययनप्रयोगमर्थनिश्चयपर्यन्तं षडङ्गं परिसमाप्य उप गुरुसमीपं निष्पाद्य स्वयं गुरवेऽभिलषितद्रव्यमार्जयित्वा तत् गुरुसमीपमाहृत्य गुरवे आचार्याय दत्वा तेनैव गुरुणा त्वं विवाहं स्नानं च कुर्वित्यनुज्ञातस्सन् दारान् कुर्वीत भार्यां कुर्वीत यथाऽऽत्मानं प्रति भार्या भवति तथा कुमारीं संस्कुर्यादित्यर्थः। दारानिति बहुत्वपुंस्त्वे अविवक्षते। आविष्टलिङ्गवचनत्वात्। एवं वृत्त्यर्थेऽध्यापने। अदृष्टार्थे तु गुरुदक्षिणामदत्वाप्यनुज्ञामात्रादेव विवाहः। 'सहस्रं श्वेतं चाश्वं प्रदायानुज्ञातो वा' इति श्रुतेः। तदर्थं चोपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातो वेति वाशब्दं केचिदध्याहरन्ति। दक्षिणात्वान्नोदकपूर्वमिदं दानम् ॥

अपरा व्याख्या वाशब्दाध्याहारेण—ब्रह्मचारी वेदं वाऽधीत्येति द्वादशवार्षिकं षट्त्रिंषदाब्दिकं तदर्धिकं पादिकं वा ब्रह्मचारी व्रतं ब्रह्म तच्चरित्वा वेदं सकलमनधीत्यापि विवाहः। अथवा व्रतं चरित्वा वेदं सकलमधीत्य विवाह इति। अस्मिन् व्याख्याने नार्थावबोधपर्यन्तमध्ययनम्। केचिदाहुः—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैविद्यकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥

इत्यस्मिन्मानवे श्लोके वेदत्रयार्थत्वेन षट्त्रिंशदादेरुक्तत्वात्, 'वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि' इति चानेनैवोक्तत्वात्, वेदह्रासवशात् काले ह्रासोऽप्युक्त एवेति त्रिवर्षादिचरणमप्यनुज्ञातमेवेति। तद्युक्तमयुक्तं वेति विचारणीयम्। ब्रह्मचारीत्यस्यापरा व्याख्या—वेदव्रतानि चत्वारि गोदानं व्रातिकं आदित्यव्रतं माहानाम्निकमित्येतानि, गोदानं व्रातिकं आदित्यव्रतं माहानाम्निकमौपनिषदमित्येतानि वा ब्रह्म तच्चरित्वा विवाह इति। अस्यार्थस्य न्याय्यमूलत्वं केचिदाहुः—ब्रह्मचारिव्रतानि पुरुषसंस्कारार्थानि नाध्ययनाङ्गानि पुरुषोद्देशेन विधानात्।

अतस्तद्विधिपर्यवसाननिबन्धनोऽयं व्रतस्नानोपदेशः । अध्ययनविधिरपि न विचारपर्यन्तः,रागत एव तत्सिद्धेः। अतस्तन्निबन्धनो वेदस्नानोपदेश इति । तदिदं मीमांसकैर्नेष्यते । वाक्यशेषात्सिद्धे कुर्वीतेति नान्दीमुखादेरुपसङ्ग्रहणार्थम् ॥ १ ॥

भा०-ब्रह्मचारी अर्थ पाठ सहित साङ्गवेद को पढ़के आचार्य को इच्छित दक्षिणा द्रव्य लाकर देकर और उनकी आज्ञा (अब तुम समावर्त्तन करके अपने अनुकूल कुमारी से विवाह करो) से सवर्णा कुमारी कन्या से समावर्त्तन पूर्वक विवाह करे ॥ १ ॥

आप्लवनं च ॥ २ ॥

उपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातः कुर्वीत इत्यस्यानुकर्षणार्थश्चकारः । आप्लवनं स्नानं समावर्तनम् दाराप्लवने इति वक्तव्ये पृथग्ग्रहणं पृथक्प्रयोगार्थम्। अत एव कालोऽपि भिद्यते । व्युत्क्रमस्तु दाराधिगन्तुरेवाप्लवनं न नैष्ठिकस्य इत्येवमर्थम्। इतरथा ह्यध्ययनपरिसमाप्तिनिमित्तमाप्लवनमित्युपशङ्क्येत ॥ २ ॥

भा०-और तब समावर्त्तन संस्कार करे ॥ २ ॥

तयोराप्लवनं पूर्वम् ॥ ३ ॥

जायापत्योर्विवाहात्पूर्वमाप्लवनं कर्तव्यं, तत् पुरुषस्य मन्त्रक्रमानुसारेण परस्ताद्वक्ष्यते 'आप्लवने पुरस्तात्'इत्यारभ्य ॥३॥ स्त्रियास्त्वाह—

भा०-कन्या और पति विवाह के पहिले स्नान करे । पति तो मन्त्र पूर्वक स्नान करे और कन्या विना मन्त्र के ही ॥ ३ ॥

मन्त्राभिवादात्तु पाणिग्रहणस्य पूर्वं व्याख्यातम् ॥४॥

वध्वाः पाणिर्गृह्यतेऽस्मिन्निति पाणिग्रहणं विवाहः । विवाहस्य काले वध्वा आप्लवनं मन्त्रलिङ्गानुसारेण कर्तव्यमिति सूत्रार्थः । तुशब्दो विशेषणार्थः । यद्यप्याप्लवनं स्नानं प्रसिद्धं,तथाऽपीह वध्वा उपस्थाप्लवनमात्रे आप्लवनशब्दः मन्त्राभिवादादिति । पूर्वमिति यत् पूर्वमाप्लवनं पूर्वमन्त्रद्योतितसुरासाधनकं तदेवोत्तरमन्त्राभ्यामपि कर्तव्यमित्येवमर्थम् अत एव मध्वाज्यशब्दाभ्यामपि सुरैव लक्षणयोच्यते सुरेतिचात्र पिष्टसयुक्तंमुदकं लक्षणया पैष्टीसुरासादृश्यादुच्यते,

मुख्यसुराया, अस्पृश्यत्वात्, अनाचाराच्च । वीति विविक्तवाचि । विविक्तकर्तृकं पाणिग्राहकज्ञातिकर्तृकमिदमाप्लवनमित्यर्थः अमुमिति मन्त्रे च पत्युः परोक्षवन्निर्देशादप्ययमर्थो विज्ञायते । अध्याहारातिसिद्धे आख्यातमिति यदपि वृद्धैरन्यदाख्यातं तदपि कर्त्तव्यमिति । किं तत् ? नान्दीमुखं कौतुकबन्धनं सङ्कल्पः इत्येवमादि । एवं प्रयोगः-विवाहदिवसात्पूर्वेद्युः पूर्वाह्णे नान्दीमुखश्राद्धं कुर्यात् । युग्मान् ब्राह्मणान् प्राङ्मुखानुदगग्रेषु दर्भेषूपवेश्य नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यस्स्वाहा नान्दीमुखेभ्यः पितामहेभ्यस्स्वाहा नान्दीमुखेभ्यः प्रपितामहेभ्यस्स्वाहेति लौकिकेऽग्नौ भोजनार्थं पक्वेन हविष्येणान्नेन चरुतन्त्रेण परिचरणतन्त्रेण वा हुत्वा गन्धपुष्पधूपदीपवासोभिर्यथालाभं यथाविभवमर्चयित्वा भोजयित्वा उच्छिष्टसमीप उदगग्रेषु दर्भेषु दधिवदराक्षतमिश्रान् पिण्डान् दद्यात् होममन्त्रैरुदगपवर्गान् । स्वाहास्थाने तृप्तिरस्त्विति विकारः । एतन्नान्दीमुखश्राद्धम् । अत्र श्लोकः—

पुंसीनामान्नचौलोपस्नानपाणिग्रहेषु च ।
अग्न्याधेये तथा सोमे दशस्वभ्युदयं स्मृतम् ॥ इति ॥

केचिन्नान्दीमुखश्राद्धमागामिनश्श्राद्धस्य प्रत्याम्नायमाहुः । स्वधाऽस्त्विति पिण्डदाने मन्त्रान्तमाहुः । ततः पत्युर्ज्ञातयो वध्वास्स्वामिनमागत्य वरणं कुर्युः—भारद्वाजगोत्राय विष्णुशर्मणे काश्यपगोत्रजां श्रीदेवीदां धर्मप्रजार्थं वृणीमह इतिवद्यथागोत्रं यथानाम वरणं कुर्युः । दास्यामीति प्रतिवचनम् । तत आप्लवनं 'काम वेद ते' इत्यादिभिर्मन्त्रैः स्वाहाकारान्तैः पिष्टसंयुक्तेनोदकेन पत्युर्ज्ञातयश्शिथिलीकृतवस्त्राया वध्वा उपस्थमाप्लावयन्ति । प्रतिमन्त्रममुमित्यत्र पतिनाम ब्रूयुः-विष्णुशर्माणमितिवत् । ततः पुण्याहवाचनम् । सर्वकर्मसु पुण्याहवाचनमादौ कर्तव्यमित्याचार्या आहुः । नान्दीमुखपुण्याहवाचने अनित्ये, आचार्येणावचनात् । करणेऽभ्युदयविशेषः । ततो वध्वास्स्वामी वधूमङ्कमारोप्य भारद्वाजगोत्राय विष्णुशर्मणे काश्यपगोत्रजां श्रीदेवीदां तुभ्यमिमां प्रजासहत्वकर्मभ्यः प्रतिपादयामीतिवत् यथागोत्रं यथानामोक्त्वा पाणिग्राहस्य पाणावुदकं सिञ्चेत् । ततो ब्रह्मोपवेशनान्तम् ॥४॥ तत आह—

भा०—यों तो स्नान करना साधारण सा काम है जो भली भाँति प्रकट है परन्तु विवाह के पूर्व जो कन्या का स्नान कराया जाता है अर्थात् विवाह होने के पहिले कन्या या वर ज्ञाति की स्त्रियां कन्या को उपटन लगाकर और कन्या के उपस्थ इन्द्रिय को भलीभांति उपटन से मलकर साफ करके स्नान करावे। तब विवाह के योग्य कन्या होती है॥ ४॥

ब्राह्मणस्सहोदकुम्भः प्रावृतो वाग्यतोऽग्रेणाग्निंगत्वोदङ् मुखस्तिष्ठेत्॥ ५॥

उत्तरवाससा सकर्णं प्रावृतशिरा उदकपूर्णकुम्भं शिरसा धारयन् उदकप्रदेशात् पूर्वेणाग्निं गत्वा ब्रह्मणः पुरस्तादुदगग्रेषु दर्भेषु उदङ्मुखस्तिष्ठेत्। आ मूर्ध्न्यवसेकाद्वाग्यतः॥ ५॥

भा०—पुरोहित या कोई ब्राह्मण उत्तरीय वस्त्र से अपने कान और शिर को ढाक कर जल भरे कलश को अपने माथे पर धर के जल रक्खे स्थान से उठकर अग्नि के पूर्व होकर ब्रह्मा के आगे उत्तराग्र कुशाओं पर उत्तराभिमुख (जब तक माथे पर जल का सेक न हो) खड़ा रहे॥ ५॥

स्नातामहतेनाच्छाद्य या अकृन्तन्नित्यानीयमानायां पाणिग्राहो जपेत् सोमोऽददिति॥ ६॥

पाणिग्राहो वधूदेशं गत्वा पूर्वमेव सहशिरसं स्नातां वधूं नववस्त्रद्वयेन 'या अकृन्तन् परिधत्त' इत्याभ्यां स्वयमेवाच्छाद्य पुनरग्निदेशं गत्वा प्रदात्रा तं देशं वध्वां प्राप्यमाणायां तां वीक्ष्य पतिः 'सोमोऽददत्' इति जपेत्। 'या अकृन्तन्' इत्यधरवासोदानं, 'परिधत्त' इत्युत्तरीयदानम् ततः 'प्र मे पतियानः' इति वधूर्जपेत्। 'प्रास्याः पतियानः' इति पतिर्जपेत्, मन्त्रलिङ्गात्॥ ६॥

भा०—पहिले से नहाई हुई वधू के पास पाणिग्रहण करने वाले जाकर दो नये वस्त्रों को लेकर कन्या के सारे शरीर को 'या अकृन्तन्' और 'परिधत्त' मन्त्रों को पढ़कर ढाक देवे और फिर अग्नि कुण्ड के पास जाकर कन्यादाता से ले जाती हुई बहू को देखकर पति 'सोमो-

ऽददत्' मन्त्र का जप करे। और 'या अकृन्तन्' मन्त्र पढ़कर नीचे पहनने का वस्त्र कन्या को देवे और 'परिधत्त' मन्त्र पढ़कर ओढ़ने का वस्त्र देवे। तब 'प्रमे पतियानः' मन्त्र वहू जपे। और 'प्रास्याः पतियानः' मन्त्र पति जपे॥ ६॥

पाणिग्राहस्य दक्षिणत उपवेशयेत्॥ ७॥

सन्निधानात्सिद्धे पाणिग्राहस्येति पत्युरेवासन उपवेशनार्थम्। दर्भेषूपवेशयेत् वधूमानेता। ततः परिस्तरणादिप्रपदान्तं कृत्वा आज्यसंस्कारानन्तरमाज्यं स्रुवमिध्मं शमीपलाशमिश्रं सलाजं च शूर्पमग्नेरुत्तरतो बर्हिषि निदध्यात्। दृषत्पुत्रं चाग्नेः पश्चात्। दृषत्पुत्रोदकुम्भयोः परिषेचने बहिर्भावः, अहव्यत्वात्॥ ७॥ प्रपदजपानन्तरमाह—

भा०–और उसके पश्चात् वहू को पति के दक्षिण भाग में कुशों के आसन पर बैठावे और परिस्तरणादि से लेकर प्रपद तक विधि करके आज्य संस्कार करके आज्य, स्रुवा समिधा, और शमी या पलाश के पत्ते सहित लावा धूप में धर के अग्नि के उत्तर में वर्हिः कुश पर रक्खे लोढ़ी शीलवट अग्नि के पश्चिम भाग में धरे॥ ७॥

अन्वारब्धायां स्रुवेणोपघातं महाव्याहृतिभिराज्यं जुहुयात्॥८॥

अनु सादृश्ये, उपवेशनवत्। अन्वारब्धायां वध्वां दक्षिणेन पाणिना पत्युर्दक्षिणं बाहुं, तस्य सन्निधानात् स्पृष्टवत्यां वध्वां बर्हिषि निहितेन स्रुवेणोपहत्योपहत्य संस्कृतमाज्यं 'भूरस्वाहा भुवस्स्वाहा स्वस्स्वाहा' इति प्रतिमन्त्रमग्नौ जुहुयात् पतिः। स्रुवस्यस्वरूपमाध्वर्यवे प्रसिद्धम्। ननु उपघातमित्यवाच्यं, अर्थसिद्धत्वात्। आज्यमिति चावाच्यं 'आज्यं जुहुयाद्धविषोऽनादेशे' इति वचनात्। जुहुयादिति चावाच्यं वाक्यशेषात्सिद्धेः। इदं तर्हि प्रयोजनम् यत्रोपघातमिति वक्ष्यति, यत्राज्यं प्रधानद्रव्यं,यत्र वा मन्त्रमनुक्त्वा होमं विधास्यति तत्र तत्र व्याहृतिभिः जुहुयादिति। आज्यमेव च द्रव्यं परिभाषितत्वात्॥८॥

भा०-प्रपद जप के बाद वधू अपने दहिने हाथ से पति के दहिने हाथ को छूती हुई और बर्हिः कुश पर रक्खे हुये स्रुवा से पति संस्कृत आज्य को ले लेकर 'भूस्स्वाहा' 'भुवस्स्वाहा' 'स्वस्स्वाहा' व्याहृति मन्त्रों को पढ़ पढ़ कर अग्नि में हवन करे ॥ ८ ॥

समस्ताभिश्चतुर्थीम् ॥ ९ ॥

भूर्भुवस्स्वस्स्वाहेति मन्त्रः। अन्वारब्धायामिति वर्तते। अयं होमो नोपघातादिसूचितेष्वस्ति, समस्ताभिश्चेति सिद्धे चतुर्थीमिति व्यक्षरनिर्देशात्। त्रिष्वपि विवाहहोमेषु 'चतुर्थी स्यात्' इति अधिकवचनात् चतुर्थीं चतुर्थीं जुहुयादिति वीप्सार्थो गम्यते नातिप्रसङ्गः। सन्निधिविशेषाच्च तद्वीप्सासिद्धिः ॥ ९ ॥

भा०-तीन आहुतियां तो 'भूस्स्वाहा' आदि से और चतुर्थी आहुती 'भूर्भुवस्स्वस्स्वाहा" इस सारी व्याहृति से देवे ॥ ९ ॥

एवं चौलोपनयनगोदानेषु ॥ १० ॥

चतुर्थीमात्रातिदेशः। ननु गोदानग्रहणमनर्थकं 'गोदाने चौलवत् कल्पः' इत्यनेनैव सिद्धत्वात्। न, तत्र केशक्लृप्तिमात्रस्यातिदेशात्।१०।

भा०-इसी भांति चूड़ाकरण, उपनयन और केशान्त संस्कारों में हवन करे ॥ १० ॥

अग्निरेतु प्रथम इति षड्भिश्च पाणिग्रहणे ॥ ११ ॥

चशब्दोऽन्वारम्भानुकर्षणार्थः ॥ ११ ॥

भा०-"अग्नि रेतुप्रथमः०" इत्यादि छः मन्त्रों से पाणिग्रहण संस्कार में हवन करे ॥ ११ ॥

नाज्यभागौ न स्विष्टकृदाज्याहुतिष्वनादेशे ॥ १२ ॥

उपघातादिशब्दसूचितास्वाज्याहुतिषु सतीष्वाज्यभागौ स्विष्टकृच्च न स्युः। नाज्यभागस्विष्टकृत इति वक्तव्ये पृथग्ग्रहणं यत्र न स्विष्टकृत् तत्राज्यभागौ न स्तः इत्येवमर्थं, यथा वास्तुहोमे। सौविष्टकृतीमष्टम्येति पश्चादादेशात्तत्र प्रतिषेधाभावार्थमनादेशे इत्युक्तम् ॥ १२ ॥

भा०-जहां हवन करने में किन मन्त्रों या किस प्रकार का हवन

होगा ऐसा स्पष्ट आदेश नहीं है वहां न आज्य भाग और न स्विष्टकृत् होम होगा ॥ १२ ॥

सर्वत्रोपरिष्टान्महाव्याहृतिभिः ॥ १३ ॥

सर्वत्रेति व्याप्त्यर्थम् । प्रतिकर्म विशेषविहितं कृत्वा भूस्स्वाहा भुवस्स्वाहा स्वस्स्वाहेत्याज्यं जुहुयात् । प्रपदान्तवत्स्वेव प्रयुक्ताज्यलाभात् नात्रान्वारम्भः ॥ १३ ॥

भा०—सब ही कर्म्मों में प्रति कर्म विहित हवन करने पर महा व्याहृति से हवन करे ॥ १३ ॥

प्राजापत्यया च ॥ १४ ॥

'प्रजापते न त्वदेतानि' इति प्राजापत्यया । चशब्दस्सर्वत्रोपरिष्टादित्यस्यानुकर्षणार्थः ॥ १४ ॥

भा०—और "प्रजापते न त्वदेतानि" मन्त्र से भी हवन करे ॥१४॥

प्रायश्चित्तं जुहुयात् ॥ १५ ॥

प्राजापत्ययेति वर्तते । यत्रान्तरितविपर्यासादौ प्रायश्चित्तापेक्षा तत्र प्राजापत्यया स्रुवेणाज्यं जुहुयात् सन्धानार्थमिति सूत्रार्थः । अन्तरिते अन्तरितं कृत्वा प्रायश्चित्तम् । सन्निपत्योपकारकाङ्गान्तराये उपकार्ये निवृत्तप्रयोजने प्रायश्चित्तमेव, नान्तरितस्य पुनःकरणम् । पदार्थविपर्यासे प्रायश्चित्तमेव न क्रमार्थं पुनरावृत्तिः । आज्यसंस्कारात्पूर्वं चेन्निमित्तं स्यात् संस्कृते आज्ये प्रायश्चित्तं कुर्यात् । उत्तरकाले चेन्निमित्तं परिज्ञानानन्तरमेव । वाक्यशेषात्सिद्धे जुहुयादिति अग्न्यनुगतादावप्येतदेव प्रायश्चित्तमित्येवमर्थम् । इतरथा प्रकृतत्वात् प्रपदान्तवत्सु कर्मस्वेव स्यात् । बहिस्तन्त्रे तु आज्यतन्त्रेण परिचरणतन्त्रेण वा प्रायश्चित्तहोमः । तन्त्रमध्ये तु तत्तत्तन्त्रमेवोपजीवति ॥

मन्त्रलिङ्गादपि सर्वत्र प्रायश्चित्तार्थता गम्यत एव । अयं मन्त्रार्थः-हे प्रजापते! यान्येतानि निमित्तानि प्रजातानि तानि त्वत्तोऽन्यो न कश्चिदपि प्रतिसमाधाने परिता बभूव न पदार्थंकर्तुं समर्थः। अतो यत्समाधानकामा वयं तुभ्यं जुहुमः तदस्माकमस्तु । तत्समाधानाच्च रयीणां वनतुल्यानां

च पुरुषार्थानां वयं स्वामिनः भूयास्मेति । स्वद्रव्यत्यागलक्षणानां कर्मणां कालात्यये 'यत्कुसीदम्' इति होमः प्रायश्चित्तं मन्त्रलिङ्गात् । प्रपदान्तवत्कर्मलोपे आज्यतन्त्रं, इतरत्र परिचरणतन्त्रम् । अयं मन्त्रार्थः—यत्कुसीदं ऋणतुल्यमवश्यं प्रदेयमप्रदत्तं मया इह जन्मनि येन अप्रदत्तेन निधिना निधितुल्येन यमस्य सदने यथेष्टं चरामि तत्प्रदेयमिदमेवाज्यं तत्कार्यकरं हे अग्ने! जीवन्नेवाहं तुभ्यं तत्प्रति तत्प्रदेयं प्रति तत्समाधानाय ददामीत्यर्थः । सर्वत्राङ्गभ्रेषे प्रयोगसमाप्त्युत्तरकालं यदि स्मरेत् तत्र न पुनः करणं नापि प्रायश्चित्तं प्रधानसम्बन्धायोगात्, विगुणमेव तदस्तु । प्रधानभ्रेषे तु साङ्गस्य पुनरावृत्तिः । बहुप्रधानके तु भ्रष्टस्यैव प्रधानस्य साङ्गस्य पुनरावृत्तिः नाभ्रष्टस्य । एवमकरणे शाट्यायनिप्रोक्तं प्रायश्चित्तं प्राजापत्यया यत्कुसीदमित्यनेन सर्वत्र विकल्पते । पूर्ववत्तन्त्रनियमः ।

अनुगतेऽग्नावग्न्यन्तरसंसर्गे रजस्वलाऽभिगमने दिवामैथुने कुमारस्य संस्काराकरणे मेखलाऽधारणे सन्ध्यादिलोपे च शाट्यायनिप्रोक्तं प्रायश्चित्तं स्यात् । अनुगतादौ दोषलघुत्वगुरुत्वापेक्षया तन्त्रनियमः यथाऽल्पकालविच्छेदे परिचरणतन्त्रं बहुकालविच्छेदे आज्यतन्त्रमिति ॥ भूस्स्वाहा । भुवस्स्वाहा । स्वस्स्वाहा । पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा । पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा । यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा । सर्वं पाहि शतक्रतो स्वाहा । पाहि नो अग्न एकया । पाह्युत द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते । पाहि चतसृभिर्वसो स्वाहा । पुनरूर्जा निवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसस्स्वाहा । सह रय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि स्वाहा । पुनश्च व्याहृतिभिराज्यं जुहुयात् इति शाट्यायनि विधानम् ॥

पुनराधाननिमित्ते तु पुनराधानमेव कुर्यात् । अग्नेर्द्वादशाहविच्छेदः, अग्नेः स्वेच्छया त्यागः, जायाभर्त्रोः प्रवासः श्वकाकचण्डालरजस्वलादिस्पर्शः समारोपितसमिन्नाश इत्येतानि पुनराधाननिमित्तानि । तस्य विधिः—दिवा हविष्यमन्नमेकभक्तं भुक्त्वा ब्रह्मचारिव्रतः अपरेद्युरुपवासं कुर्वन् 'तपश्च तेजश्च' इत्यादि 'ब्रह्मणः पुत्राय नमः इत्येवमन्तं

शतकृत्वोऽष्टकृत्वश्चारण्ये जपित्वा 'देवकृतस्य' इत्यादि 'अप्सु धौतस्य' इत्यतः प्राक् तथा जपेत्। ततः श्वोभूते 'पुनर्मा' इत्येताभ्यां जज्ञमवगाह्य ब्राह्मणस्यानूचानस्याग्निमतो गृहात्तदलाभे यथासम्भवं श्रौतस्मार्त्तपरस्य गृहादग्निमाहृत्य प्रपदान्तं कृत्वा व्याहृतिभिर्हुत्वा। भूस्स्वाहेति त्रिर्जुहुयात् ततो भुवस्स्वाहेति त्रिः। ततः स्वस्स्वाहेति त्रिः। ततश्च प्रतिमन्त्रं द्वादशकृत्वः। ततश्च प्रतिमन्त्रं त्रिष्कृत्वः। तत उत्थाय नमस्काराञ्जलिं कृत्वा 'अग्निं दूतं, अग्निर्मूर्धा, अग्निस्तिग्मेन, अग्ने रक्षाणः' इति चतुर्ऋचं जपेत्। अथोपविश्य 'अग्न आयाहि वीतये, अग्निं वो वृधन्तं, नमस्ते अग्न ओजसे, उप त्वाऽग्ने दिवेदिवे' इति चतसृभिराज्यं जुहुयात्। सोमं राजानं स्विष्टकृतं च। तत उपरिष्टाद्धोमादि। नात्र वध्वाऽन्वारम्भः, अग्निसंस्कारत्वात्। सर्वेषां प्रपदान्तानामन्ते वामदेव्यगानम् तद्गजपश्च। सायंप्रातर्होमानामन्ते यथासङ्ख्यं गौसूक्ताश्वसूक्तगानम्। अग्निधारणासम्भवे 'अयं ते योनिः' इति समित्समारोपणं 'या ते अग्ने' इत्यात्मसमारोपणं वा। उभयत्र लौकिकाग्नौ 'उपावरोह' इत्यवरोहणम्। इदं सर्वं पुनराधानविधावुक्तम्।

दिवा हविष्यभोजनादि देवकृतजपान्तं स्मृत्युक्ताभ्यां कृच्छ्रचांद्रायणाभ्यां विकल्पते। एवं विनिवेशः—अकामकृते निमित्ते संधानसम्भवे सत्यनुपेक्षायामिदं, उपेक्षायां तु कृच्छ्रः। कामकृते चांद्रायणम्। अत्रापरं मतं—कृच्छ्रचांद्रायणे त्रेताग्निविषये एव। गृह्याग्निनाशे पुनराधानमित्युक्तम्। पुनराधानविधावत्रैव गृह्यसङ्ग्रहोपदेशः—

विच्छिन्नेऽनुगते सद्यः प्राजापत्यांतपञ्चकम्।
द्वादशाहातिपत्तौ चेत् इध्मपाहिप्रकीर्तितः॥
प्राक्ततश्शुद्धपाहि स्यात् अर्वाङ्मासात्परं न तु।
मासादूर्ध्वं यथाशास्त्रं पुनराधानमिष्यते॥

अस्यार्थः—गृह्याग्न्यनुगतौ मासादूर्ध्वं पुनराधानं, ततः प्राक् द्वादशाहादूर्ध्वं आज्यतंत्रेण पाहित्रयोदशहोमः। ततः प्राक् स एव परिचरणतंत्रेणेति। आज्यतंत्राणां प्रकृतिर्विवाहः। परिचरणतंत्राणां औपासनहोमः। चरुतंत्राणां दर्शपूर्णमासौ। पशुतंत्राणां अष्टकापशुः

आज्यतंत्रे वरणस्याप्रवृत्तिः तस्य प्रदानार्थत्वात्। अर्थलोपात् आसवन- 'समानयामुम्' इति मंत्रलिङ्गात् भर्तृसम्बंधार्थत्वादप्रवृत्तिः। लेखाचतु- र्थीहोमयोरपि न पुनरासवनम् कृतस्यैव सकलविवाहशेषत्वात् होमत्रयात्म- को विवाहः। वरणवदुदकसेचनम्। उदकुम्भस्य मूर्ध्न्यवसेकार्थत्वाद- प्रवृत्तिः 'स्नातामहतेनाच्छाद्य' इत्यस्य। पुंसवनादौ पुनः प्रतिप्रसवाद- प्रवृत्तिः। 'सोमोऽददत्' इत्यस्य च वधूदानप्रकाशनार्थत्वात् 'प्रमे पति- यान' इत्यस्य च भर्तृसम्बन्धार्थमार्गक्लृप्तिपरत्वादप्रवृत्तिः। लेखाच- तुर्थीहोमयोरपि न पुनः क्रिया होमत्रयात्मकस्य मार्गस्यैकत्वात्। दृष- त्पुत्रस्य चाक्रमणार्थत्वादप्रवृत्तिः। शूर्पलाजानां च लाजहोमार्थत्वान्न निधानम्। आज्यतन्त्रेष्वन्वारम्भस्तु संस्कारकर्मसु संस्कार्येण कर्तव्य एव संस्कारार्थत्वात् नान्येषु। होमानामप्रवृत्तिः उपरिष्टाद्धोमान् वर्ज- यित्वा प्रधानत्वात्। भवतु वा व्याहृतिहोमानामङ्गत्वात् तथाऽपि दर्शपूर्ण- मासयोरप्येतत्प्रकृतित्वात् सर्वेषु प्राप्तानामुपघातादिसूचनम्। 'एवं चौ- लोपनयनगोदानेषु' इति च नियमार्थं भविष्यति। प्रयोगमध्ये नाज्यभा- गौ' इत्यादेस्सर्वार्थस्य विधानस्यैतत्प्रयोजनम्, कथं नामैतत् प्रागुक्ताना- मेवेतिकर्तव्यतात्वेन प्रदेशान्तरे प्रवृत्तिः न परस्तावद्वक्ष्यमाणानां 'हुत्वो- पोत्तिष्ठते' इत्येवमादीनामपि। प्रकृतमनुसरामः ॥१५॥

भा०—जहां किसी कारण प्रायश्चित्त की अपेक्षा हो—वहां २ प्राय- श्चित्तीय आहुतियां करे॥ १५॥

हुत्वोपोत्तिष्ठतः॥ १६॥

व्याहृतिभिर्हुत्वा उपश्लिष्टौ जायापती सहोत्तिष्ठतो वध्वा दक्षिणं पाणिं दक्षिणेन पाणिना गृह्णन् पतिरुत्तिष्ठेत् तस्याः अस्वातन्त्र्यात्। हुत्वेति समानकर्तृकत्वं होमेऽप्युपश्लेषार्थम्। अतोऽन्वारब्धायामेव होमः। न च पूर्ववदत्रान्वारम्भः पतिपाणेर्होमे व्यापृतत्वात्॥ १६॥

भा०—महा व्याहृति होम के बाद वर बधू दोनों एक साथ उठें। अर्थात् उठते समय वर के दहिने हाथ कन्या के पीठ पर होकर दहिने कन्धे पर और कन्या के बायें हाथ, वर के पीठ पर होकर बायें कन्धे पर रहे॥ १६॥

अनुपृष्ठं गत्वा दक्षिणतोऽवस्थाय वध्वञ्जलिं गृह्णीयात्।१७।

अनु सादृश्ये। उत्थानव्रतपाणिं गृह्णन्नेव तस्याः पृष्ठदेशेन गत्वा दक्षिणतो दर्भेषु स्थित्वा तस्याः आकोशमञ्जलिमुभाभ्यां हस्ताभ्यामुपाददयात् स्वीकुर्यात्॥ १७॥

भा०—पति, बहू के पीठ की ओर होकर दहिने ओर चलकर उसकी अञ्जलि पकड़ कर उत्तर मुंह हो बैठे॥ १७॥

पूर्वा माता शमीपलाशमिश्रान् लाजाञ्छूर्पे कृत्वा॥१८॥

पश्चादुद्वाहवचनात्, वधूगृहं गत्वा विवाह इति वधूमातुस्सन्निधानात्, सा पूर्वमेव लाजान् स्वयमुत्पाद्य शम्या पलाशेन वा संसृष्टान् शमीपर्णमिश्रान् वा तान् वर्हिषि शूर्पे निधाय तिष्ठति। तदानीं शूर्पेणादायाग्नेः पुरस्ताद्वधूमाता तिष्ठेत्। एवं सूत्रयोजना—लाजान् कृत्वा शूर्पे निहिताञ्छमीपलाशमिश्रानादाय पूर्वा पूर्वदिक्सम्बन्धिनी वधूमाता तिष्ठेदिति॥ १८॥

भा०—कन्या की माता या भाई शमी पलाश (पत्ता) मिला लावा शूप में लेकर अग्नि के पूर्व भाग में (खड़ी या) खड़ा रहे॥१८

पश्चादग्नेर्दृषत्पुत्रमाक्रमयेद्वधूं दक्षिणेन प्रपदेन इममश्मानमिति॥ १९॥

पश्चादग्नेः स्थितं तं दृषत्पुत्रं सव्येन पाणिना अञ्जलिं गृह्णन्नेव दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमूरुं गृहीत्वोत्क्षिप्यांगुलिमूलेन स्वयं मन्त्रमुक्त्वाऽऽक्रमयेत्। सन्निधानात्सिद्धे दक्षिणेनेति प्रागुदीचीमुत्क्रमयेदित्यत्रापि दक्षिणनियमार्थम्॥ १९॥

भा०—और अग्नि के पश्चिम भाग में रक्खा हुआ शीलवट को वायें हाथ से अञ्जलि को पकड़े हुये दहिने हाथ से दहिने पैर को शील वट पर चढ़ावे और पूर्व से ईशान कोण में चलावे और पति उस समय "इममश्मानमारोहाश्मेवत्वꣳस्थिराभव०" इत्यादि मन्त्र पढ़ता जावे॥ १९॥

सकृद्गृहीतमञ्जलिं लाजानां वध्वञ्जलावावपेत् भ्राता ॥२०॥

वधूभ्राता, वध्वञ्जलाविति वध्वास्सन्निधानात्। शमीपलाशमिश्राणामञ्जलिम् ॥ २० ॥

भा०-और बहू का भाई बहू की अञ्जलि में एक अञ्जलि लावा लेकर एक ही वार में देवे ॥ २० ॥

सुहृद्वा कश्चित् ॥ २१ ॥

भ्रातुरलाभे वध्वा हितैषी कश्चित्पुरुषः आवपेत्। सुहृद्वेति सिद्धे कश्चिदिति पुरुषनियमार्थम् ॥ २१ ॥

भा०-यदि उसका भाई न हो तो कोई सुहृत् देवे ॥ २१ ॥

तं साऽग्नौ जुहुयादविच्छिन्याञ्जलिं इयं नारीति ॥ २२ ॥

प्रकृतत्वात्सिद्धे तमिति तमेव लाजाञ्जलिं जुहुयात् उपस्तरणाभिघारणे न कुर्यादित्येवमर्थः अन्यथा हि होमद्रव्ये दर्शनात् शङ्का स्यात्। सेति सा वधूः जुहुयादेव न मन्त्रं ब्रूयात् पतिरेव मन्त्रं ब्रूयादित्येवमर्थम् । अग्नाविति प्रभूतेऽग्नावित्येवमर्थम्। पाण्योरविच्छेदं कुर्वती वधूरंगुल्यग्रेण जुहुयात्। दृषत्पुत्राक्रमणादूर्ध्वमञ्जलिं गृह्णीयादेव पतिः ॥ २२ ॥

भा०-उस भाई या सुहृत की दी हुई लावा की अञ्जलि को पूर्व उपदेशानुसार उपस्तीर्णाभिघारित कर अञ्जलि अलग २ न हो जावे। इस प्रकार सावधानी से बधू अग्नि में आहुति देवे और पति "इयं नारी०" इत्यादि मन्त्र जपे ॥ २२ ॥

अर्यमणं पूषणमित्युत्तरयोः ॥ २३ ॥

उत्तरयोर्लाजहोमयोरिमौ मन्त्रौ ॥ २३ ॥

हुते तेनैव गत्वा प्रदक्षिणमग्निं परिणयेत् कन्यला पितृभ्य इति ॥ २४ ॥

इयं नारीति हुते येनैव प्रकारेण दक्षिणतो गतस्तेनैव प्रकारेण

पाणिं गृह्णन्ननुपृष्ठमुत्तरतो गत्वा पाणिं गृह्णन्नेव अग्निं प्रदक्षिणीकुर्वन् वधूमनुगमयेत्। आज्यस्तु वशूर्पदृषत्पुत्राणां प्रदक्षिणेऽन्तर्भावः। मातृब्रह्मोदकुम्भकानां वहिर्भावः। पतिर्मन्त्रं ब्रूयात्॥ २४॥

अवस्थानप्रभृत्येवं त्रिः॥ २५॥

मध्यमायामावृत्तौ अर्यमणमिति लाजहोममन्त्रः। उत्तमायां पूषणमिति। इतरत्समानम्॥ २५॥

भा०-इस प्रकार आहुति देने पर वेदज्ञ ब्राह्मण पति ने जिस प्रकार गमन किया था उसी प्रकार अर्थात् कन्या को आगे २ लेकर अग्नि की प्रदक्षिणा कराते हुये फिर आकर "कन्यलापितृभ्यः" इस मन्त्र का पाठ करके उस कन्या को परिणीता करे। अर्थात् कन्या जो पति लोक पाती है यह उसे समझा देवे। इस प्रकार बहू परिणीता होने पर और भी दो वार उसी प्रकार अवस्थान, अश्मारोहण, मंत्र पाठ, लाजावपन, और लाजा होम करे परंतु इन दोनों होम में पूर्व मंत्रों को न पढ़े। उसके बदले में "अर्यमणंनुदेवं०" एवं "पूषणं०" इन दो मंत्रों का पाठ यथाक्रम करे॥ २३॥ २४॥ २५॥

शूर्पेण शिष्टानग्नावोप्य प्रागुदीचीमुत्क्रमयेत् एकमिष इति॥ २६॥

प्रकृतत्वासिद्धेऽग्नावित्यग्नौ यत्कृत्यं तत्सर्वं तत्रैव समापनीयम्। प्रागुदीचीमुत्क्रमयेदित्यस्य च गमनोपक्रमत्वात् न प्रत्यावृत्य समाप्तिरिति केचित्। तदयुक्तम्—अग्नावित्यनुक्तेऽप्यन्यत्राप्यहोमत्वाल्लाजप्रक्षेपप्रसङ्गात् 'अपरेणाग्निमौदकः' इतिवचनादग्न्यर्थमवश्यंभावित्वाच्च प्रत्यागमनस्य च ल्यपा क्रमस्य द्योतितत्वात्। उत्क्रमणं दृषत्पुत्राक्रमणवत् प्रतिमन्त्रम्। सप्त पदानि। सखी सप्तपदीति वधूमीक्षमाणो जपेत्, मन्त्रलिङ्गात्॥ २६॥

भा०-तीन वार होम करने से बचा हुआ लावा आदि को सूप में लेकर विना मंत्र पढ़े अग्नि में डाले और ईशान कोणमें "एकमिषे०" प्रभृति ६ मंत्रों को पढ़ २ कर बहू को यथा क्रम से सात पग इस भाँति

चलावे जिसमें बहू का दहिना पग आगे २ को चले और वायां पीछे २ और बाँया पग दहिने पग में ठेक न जाया करे ॥ २६ ॥

ईक्षकावेक्षणरथारोहणदुर्गानुमन्त्रणान्यभिरूपाभिः ॥२७॥

वधूं द्रष्टुमागताः सुमङ्गलीस्त्रियो वीक्षमाणः 'सुमङ्गलीः' इति जपेत्। 'सुकिंशुकम्' इति वधूं रथमारोहयेत्। अध्वनि भयस्थाने 'मा विदन्' इति जपेत्। सुमङ्गलीरित्यस्यानागताभ्यां सह निर्देशः तत्साम्यार्थम्, यथा महत्यध्वनि रथारोहणबहुत्वे भयस्थानबहुत्वे च तयोरावृत्तिः दृष्टार्थत्वात् तथाऽस्यापि स्त्र्यागमनावृत्तावाविवाहसमाप्ते-रावृत्तिरिति ॥ २७ ॥ ईक्षकावेक्षणानन्तरमाह—

भा०–ईक्षकों (बहू को देखने के लिये आये हुये व्यक्ति) को देखना, बहू का पति गृह जाने के लिये रथ पर चढ़ना, मार्ग में भय होना आदि के अभिरूप मंत्रों को पढ़े। जैसे देखने वाले "सुमङ्गली" इत्यादि मंत्र को जप करें, "सुकिंशुकम्" मंत्र बहू को रथ पर चढ़ाते समय पढ़े, मार्ग में जहां भय हो वहाँ 'मा विदन्०" आदि मंत्र पढ़े ॥ २७ ॥

अपरेणाग्निमौदको गत्वा पाणिग्राहं मूर्धन्यवसिञ्चेत् ।२८।

ब्रह्माग्न्योरन्तरेण गत्वा ॥ २८ ॥

वधूं च ॥ २९ ॥

क्रमेणावसेकः ॥ २९ ॥

समञ्जन्त्वित्यवसिक्तः ॥ ३० ॥

जपेत् पतिः ॥ ३० ॥

भा०–इसके बाद कोई जल वाहक व्यक्ति अग्नि के पश्चिम भाग में आकर विवाह के लिये तैयार वर और कन्या के माथे पर जल ढालकर स्नान करावे और उसी समय वर बधू एक वाक्य मे "समञ्जन्तु०" मंत्र पढ़ें ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

दक्षिणं पाणिं साङ्गुष्ठं गृह्णीयात् गृभ्णामि ते इति षड्भिः ॥ ३१ ॥

उत्तरोत्तरेण मन्त्रेणोत्तरोत्तरमभिपीडनम्। अथ प्रदक्षिणमग्निं प्रत्यागम्य उपरिष्टाद्धोमादि वामदेव्यगानान्तं कुर्यात् यथा दर्शपूर्णमासयोर्वक्ष्यते। नात्रान्वारम्भः ॥ ३१ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमस्य तृतीयः खण्डः ॥ १ । ३ ॥

भा०-पति, उस जल सिक्त बहू की अञ्जलि को बायें हाथ से पकड़ कर अपने पास कुछ ऊपर लेकर दहिने हाथ से उसके अंगूठा सहित उत्तान दहिना हाथ (हाथ के पहुंचे से अंगुलि तक) पकड़ कर "गृभ्णामिते०" इत्यादि विवाह के ६ मंत्रों को पढ़े ॥ और अग्नि की प्रदक्षिणा क्रम से घूमकर होम करके वामदेव्यगान तक सब क्रियायें करे ॥ ३१ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्र के प्रथम पटल के तीसरे खण्ड का
भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ १ ॥ ३ ॥

प्रागुदीचीमुद्वहेत् ॥ १ ॥

होमानन्तरमेव प्रागुदीचीं दिशं बधूमग्निं च प्रापयेत्पतिः । १ ।

भा०-होम के पश्चात् ही ईशान कोण में बहू और स्थापनार्थ अग्नि को पहुंचाये ॥ १ ॥

ब्राह्मणकुलेऽग्निमुपसमाधाय पश्चादग्नेर्लोहितं चर्मानडुहमुत्तरलोम प्राग्ग्रीवमास्तीर्य वाग्यतामुपवेशयेत् ॥ २ ॥

विवाहगृहे गृहान्तरे वा। यदि क्षत्रियादिगृहे विवाहः तदा त्वन्यस्मिन्नेव ब्राह्मणकुले अग्न्युपसमाधानान्तं कृत्वा चर्मणि बधूमुपवेशयेत् पतिरस्तमयकाले। नात्र वध्वा दर्भासनं तत्कार्यकरणत्वाच्चर्मणः ॥ २ ॥

भा०-यदि क्षत्रियादि के घर विवाह हो और उसका अपना घर दूर हो तो पास ही ईशान कोण में फिर किसी ब्राह्मण के घर में उत्तर विवाह (चतुर्थी कर्म) करने के लिये अग्नि स्थापन करे ॥ और उस स्थापित अग्नि के पश्चिम भाग में लाल रंग का गौ के चर्म को लेकर इस प्रकार बिछावे कि जिसमें चमड़े का रोम ऊपर को हो और पूर्व

पश्चिम लम्बा हो चमड़े का शिरोभाग पूर्व की ओर हो और इसके नीचे का हिस्सा भूमि पर हो । उस बिछाये हुये गोचर्म पर बहू को नियमित वाक्य (अतिरिक्त बातें न करे) बैठावे ॥ २ ॥

प्रोक्ते नक्षत्रेऽन्वारब्धायां स्रुवेणोपघातं जुहुयात् षड्भिर्लेखाप्रभृतिभिस्सम्पातानवनयन् मूर्धनि वध्वाः ॥ ३ ॥

अन्येनोदितानि नक्षत्राणीत्युक्ते । अत एवोपर्याच्छादिते देशे होमः । प्रशब्दः प्रथमोदयार्थः । परिसमूहनादीनि कृत्वा व्याहृतिभिस्समस्ताभिश्च हुत्वा लेखादिभिस्स्वाहाकारान्तैर्जुहुयात् । प्रकृतितस्सिद्धे अन्वारब्धायामित्येतत् प्रकृतिसादृश्यार्थत्वात् उपवेशनवत् पत्युरेवालम्भ प्रयोक्तृत्वार्थम् । इतरथा पित्रादेस्स्यात । स्रुवेणेति स्रुवेण सम्पातावनयनार्थं, इतरथा दक्षिणेन पाणिना स्यात् । उपघातमिति प्रत्युपघातं व्याहृतिहोमेष्वपि सम्पातावनयनार्थम् । उपघातमित्याभीक्ष्ण्ये णमुल् । एतत्त्रितयमपि न्यायसूचनपरमेव । तथाहि—आद्ये होमे न पितृत्वमन्वारम्भप्रयोक्तृत्वे कारणं, किं तर्हि ? तस्याः पित्रधीनता । 'बाल्ये पितृवशे तिष्ठेत्' इति वचनात् पित्रधीनत्वम् । सा त्विदानीं भर्त्रधीना 'पाणिग्राहस्य यौवने' इति वचनात् । न्यायपरत्वात् सूत्रस्य, न्यायस्य च तुल्यत्वात् । चतुर्थीहोमेऽपि भर्तुरेव प्रयोक्तृत्वम् । उपनयनादिषु चाचार्यस्य । सम्पातानामपि स्रुवगतत्वेन साधनान्तरप्रयुक्तिक्षयात्तेनैवावनयनम् । अत एव चतुर्थीहोमेऽपि तथैव । तथा दशानां होमानां संस्कारार्थत्वात् संस्कारस्य सम्पातावनयनद्वारत्वात् दशस्वप्यवनयनम् । अत एव चतुर्थीहोमेऽपि नवस्वास्रवनद्वारत्वात् हुत्वा हुत्वा सम्पातावनयनं होमावशिष्टे संपातप्रसिद्धेः ॥ ३ ॥

भा०—यदि मेघादि के कारण नक्षत्र गण न दीख पड़ें तो प्राज्ञ ज्योतिषी के बतलाये हुये नक्षत्रोदय काल में "लेखा सन्धिषु०" इत्यादि छः मन्त्रों से बहू को अन्वारब्ध कर स्रुवा से उपघात छः आहुतियाँ देवे और उन प्रत्येक छः आहुतियों के अन्त में वधू के माथे पर घी का ढार देवे ॥ ३ ॥

प्रदक्षिणमग्निं परिक्रम्य ध्रुवं दर्शयति ध्रुवाद्यौरिति ॥४॥

पत्युर्मन्त्रः॥ ४॥

भा०-होम के पश्चात् वर वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हुये मण्डप से बाहर निकल कर पति वहू को "ध्रुवाद्यौ०" मन्त्र पढ़कर ध्रुव नक्षत्र को दिखलावे॥ ४॥

अभिवाद्य गुरून् गोत्रेण विसृजेद्वाचम्॥ ४॥

काश्यपगोत्रोऽहमभिवादये इतिवत् स्वगोत्रमुक्त्वाऽभिवाद्य वधूर्वाङ्नियमं त्यजेत्। नावश्यं वदेत्। अथोपरिष्टाद्धोमादि वामदेव्यगानान्तं कुर्यात्॥ ५॥ तत आह

भा०-और वधू अपने पति का गोत्र के साथ अपना नाम लेकर पति को अभिवादन करे और जो नियमित बोलने का नियम था उसे छोड़ देवे॥ ५॥

गौर्दक्षिणा॥ ६॥

होमत्रयार्थमस्मिन् काले ब्रह्मणे देया। अत एव त्रिष्वपि होमेषु एक एव ब्रह्मा॥ ६॥

भा०-इस विवाह यज्ञ में ब्राह्मण को एक गौ दक्षिणा में देवे॥६

अत्रार्घ्यम्॥ ७॥

अस्मिन् काले विवाहकर्त्रे तज्ज्ञातिभ्यश्च वध्वाः प्रदाताऽर्घ्यं दद्यात्। तस्य विधिर्मन्त्रक्रमानुसारेण, ४।४।५ मधुपर्कं प्रतिग्रहीष्यन् इत्यारभ्य वक्ष्यते॥ ७॥

भा०-इस समय विवाह करने वाले, और अपनी जाति वालों के लिये कन्यादाता अर्घ्य देवे॥ ७॥

आगतेष्वित्येके॥ ८॥

यदा विवाहार्थं वध्वा गृहमागताः तदेत्यर्थः॥ ८॥

भा०-किन्हीं आचार्यों का मत है कि विवाह के लिये वहू के घर जब आवें तब अर्घ्य देवे॥ ८॥

त्रिरात्रं क्षारलवणे दुग्धमिति वर्जयानौ सह शय्यातां ब्रह्मचारिणौ॥ ९॥

होमादूर्ध्वं नियमः तद्दिनप्रभृति त्रिरात्रम्। दुग्धमुद्धृतसारं पिण्याकादि। सह एकस्यां शय्यायां रात्रिषु शयीयातां ब्रह्मचारिणौ निवृत्तमैथुनौ परस्परमन्यतश्च। इतिशब्दोऽन्यस्यापि व्रतविरोधिनो वर्जनार्थः ॥ ९ ॥

भा०—जिस दिन पहिले विवाह कार्य में प्रवृत्त हो उस दिन से तीन रात्रि तक क्षार लवण और दूध को छोड़कर केवल हविष्य अन्न भोजन करते हुये मैथुन रहित हो एक शय्या पर शयन करें ॥ ९ ॥

हविष्यमन्नं परिजप्यान्नपाशेनेत्यसाविति वध्वा नाम ब्रूयात् ।१०।

त्रिरात्रं भोजनकालेष्वाहृतमन्नमभिमृशन् जपित्वा ॥ १० ॥

भा०—तीन अहोरात्र जो वर बहू को हविष्यान्न भोजन करना पड़ेगा उसका नियम यह है कि जब खाने के लिये हविष्यान्न लाया जावे तो "अन्नपान मणिना" मंत्र का जप करके "यह है" ऐसा कह कर बहू का नाम पति बोले ॥ १० ॥

भुक्त्वोच्छिष्टं वध्वै दद्यात् । ११ ।

सा चाश्नीयात्। लेखाहोमं समाप्य वधूं 'सुकिंशुकम्' इति रथमारोप्य अग्निं च गृहीत्वा भयस्थाने 'मा विदन्' इति जपित्वा स्वगृहं प्रविश्य 'इह गावः' इति जपित्वा शय्यायामुपविश्य वधूमीक्षमाणः 'इह धृतिः' इति जपेत् मन्त्रलिङ्गात्। तत्र त्रिरात्रं सह शयीयाताम् ॥११॥ तत आह—

भा०—और भोजन करने से जो उच्छिष्ट बच जावे उसे बहू को देवे और बहू उसको खा जावे। लेखा होम समाप्त कर बहू को "सुकिंशुकम्" यह पढ़कर रथ पर चढ़ावे और अग्नि को अपने साथ ले लेवे मार्ग में जहां किसी प्रकार का भय हो वहाँ "माविदन्" मंत्र को जप कर अपने घर में प्रवेश कर "इह गावः" मंत्र को पढ़कर शय्या पर बैठकर बहू को देखता हुआ "इह धृतिः" मंत्र को पढ़े और उसी एक आसन पर तीन रात्रि तक मैथुन रहित शयन करे ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वं त्रिरात्राच्चतसृभिराज्यं जुहुयात् अग्ने प्रायश्चित्तिरिति समस्तपञ्चमीं सम्पातानवनयन्नुदपात्रे ॥ १२ ॥

चतुर्थेऽहनि पूर्वाह्णे प्रपदान्तं कृत्वाऽन्वारब्धायां महाव्याहृतिभिः समस्तान्ताभिर्हुत्वा 'अग्ने प्रायश्चित्तिः' इत्यादिभिः स्वाहाकारान्तैर्जुहुयात् । नव सम्पाताः । महत्यध्वन्यर्थादुत्कर्षः सहशयनस्य । हविष्यमन्नमित्यस्य प्रकृतत्वात्तद्व्युदासार्थमाज्यमित्युक्तम् । उदकपूर्णं पात्रं स्नानाय पर्याप्तं स्यात् ॥ १२ ॥

भा०—इसके बाद चौथे दिन, दिन के पहिले भाग में "प्रपदान्त" तक के सारे विधि को वहू को अन्वारब्ध होकर महाव्याहृतियों से तीन आहुतियां और सारी महाव्याहृति से चौथी वार होम कर "अग्ने प्रायश्चित्तिः०" मंत्रों में स्वाहा जोड़कर उनसे आहुतियां देवे उनमें से दूसरी आदि आहुति में इस मंत्रस्थ अग्नि के वदले "वायु" "चन्द्र" और "सूर्य" को पढ़े यही इसमें विशेषता है और पांचवीं आहुति में 'अग्नि', 'वायु', 'चन्द्र' और 'सूर्य' इन्हीं चार देवताओं को एक काल में सम्बोधन करे, सुतराँ मन्त्रों में जितने एक वचन हैं, उन सब को वहु वचन करके पढ़े । इन पाँच प्रायश्चित्त आहुतियों की प्रत्येक आहुति के अन्त में घी के धारणापात क्रम से चमसे में से रक्षित रक्खे ॥१२॥

तेनैनां सकेशनखामाप्लावयेत् ॥ १३ ॥

सहशिरसं पतिस्स्वयमेव स्नापयेत् । ततो वामदेव्यगानान्तं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत् ॥ १३ ॥

भा०—साथ में लाये हुये जल से वहू को स्वयं पति शिर सहित स्नान करावे । और वामदेव्य तक गान करके ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १३ ॥

ततो यथार्थं स्यात् १४

न प्रतिहोमं साध्यभेदायत्तं याथार्थ्यं, किन्त्वेकसाध्यमेवेदं होमत्रयात्मकमनुष्ठानमित्येवमर्थम् ॥ १४ ॥

भा०—तव प्रयोजनानुसार जो २ कार्य हो वर वधू करें ॥१४॥

ऋतुकाले दक्षिणेन पाणिनोपस्थमालभेद्विष्णुर्योनिं कल्पयत्विति समाप्तायाम् । १५ ।

'दायादिरग्निः' इत्यस्यापि पक्षस्याभ्युपगमं दर्शयितुमौपासनहोममनुक्त्वेदमुक्तम् ॥ रजोदर्शनप्रभृति षोडशरात्रं ऋतुकालः । यदि

रात्र्यास्तृतीये भागे रजस्स्यात् तदोत्तरमेवाहर्विद्यात् चतुर्थे भाग इति केचित्। समाप्तायामिति सम्यगवस्थायां प्राप्तायां वध्वामित्यर्थः। काऽसाववस्था।

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्द्या एकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दशरात्रयः॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु॥

एवमादिसूचिता॥ १५॥

सम्भवेद्गर्भं धेहीति॥ १६॥

सम्यगालोच्य मुहूर्तादि मिथुनीभवेत्॥ १६॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमस्य चतुर्थः खण्डः॥१।४॥

भा०—जिस दिन (या रात्रि) में स्त्री को मासिकधर्म आरम्भ हो उससे १६ रात्रि तक ऋतु काल होता है परन्तु उनमें आरम्भ से ४ रात्रि निन्द्य काल है, और एकादशी और त्रयोदशी संगम करने में प्रतिषिद्ध हैं बाकी १० रात्रि शुद्ध होती हैं इनमें से जिसकी पुत्र की इच्छा हो वह जोड़े तिथियों (द्वितीया, चतुर्थी आदि) में और जिस को कन्या की इच्छा हो वह विषम (परवा, तृतीया आदि) तिथियों में बहू के पास सम्प्रयोग के लिये जावे। अर्थात् ऋतुकाल में पति पहिले "विष्णुर्योनिं" कल्पयतु०" ऋचा और "गर्भं धेहि सिनीवालि०" मंत्रों को पढ़ कर अपने दहिने हाथ से बहू के उपस्थ (योनि) को अभिमर्श कर तब संगम करे॥ १५॥ १६॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्र के पहिले पटल के चौथे खण्ड का
भाषानुवाद समाप्त हुआ॥ १॥ ४॥

यस्मिन्नग्नौ पाणिं गृह्णीयात्स गृह्यः॥ १॥

पाणिं गृह्णीयादिति विवाहकरणं लक्ष्यते। व्यवहारार्था हि संज्ञा। एवं चेद्विवाहादनु निष्पादितत्वात् गृह्यत्वस्य विवाहावस्थायां गृह्यत्वाभावात् ब्रह्मा न स्यात्। न, 'गौर्दक्षिणा' इति लिङ्गात्॥ १॥

भा०—जिस अग्नि में विवाह कार्य सम्पन्न हो उसी को 'गृह्य' कहते हैं॥ १॥

यस्मिन्वाऽन्त्यां समिधमादध्यात् ॥ २ ॥

यस्मिन्नग्नौ ब्रह्मचार्यन्त्यां समिधमादध्यात् स वा गृह्यः । अस्मिन्पक्षे तु तत्प्रभृति सायंप्रातर्होमादीनि स्युः । गृह्य एव च विवाहः ॥२॥

भा०—या जिस अग्नि में ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार हो उसको 'गृह्य' कहते हैं ॥ २ ॥

निर्मन्थ्यो वा पुण्यस्सोऽनर्धुकः ॥ ३ ॥

उक्तस्यैव प्रकारद्वयस्योत्पत्तिनियमोऽयं, न गृह्यान्तरम् । वाशब्दश्शास्त्रान्तरोक्तस्यापि श्रोत्रियागारादेस्संग्रहणार्थः । पुण्यः परलोक हितकरः । अनर्धुकः इह जन्मनि ऋद्ध्यभावकरः ॥ ३ ॥

भा०—पूर्वोक्त दो प्रकार के अग्नि अरणि काष्ठ द्वारा मथ कर जो उत्पन्न किया जाता है वह परलोक में हितकर होता है । और इस लोक में सम्पत्ति नहीं होती है ॥ ३ ॥

अम्बरीषाद्वाऽऽनयेत् ॥ ४ ॥

अपूपविक्रयार्थादग्नेर्वा ॥ ४ ॥

भा०—या भर भूजा (हलवाई) के घर से अग्नि लावे ॥ ४ ॥

बहुयाजिनो वाऽगाराच्छूद्रवर्जम् ॥ ५ ॥

बहुदेवपूजकस्य बहुदातुर्वा गृहादानयेदग्निं विवाहं कर्तुमन्त्यां समिधं वाऽऽधातुम् ॥ ५ ॥

भा०—या बहुत देवता पूजने या यज्ञ करने वाले के घर से अग्नि लावे (शूद्र के घर से नहीं) और इसी अग्नि में विवाह करे या समिदाधान करे ॥ ५ ॥

सायमाहुत्युपक्रमं परिचरणम् । ६ ।

चतुर्थीहोमानन्तरं यस्सायंकालः तमारभ्याजीवनपरिसमाप्तेः आऽऽश्रमपरिसमाप्तेः आऽऽधानकालाद्वा चरणं अनुष्ठानं कुर्यात् । परीत्यधिकारैक्यं सूचितम् । अतो नान्तरा ब्राह्मणभोजनम् । अन्त्यां समिधं, दायादिर्वा इत्यनयोरपि पक्षयोस्सायमाहुत्युपक्रममेव ॥ ६ ॥

भा०—उस दिन की प्रातः कालिक आहुति उस प्रकार सिद्ध हो

चुकने पर इसके अनन्तर सामान्यतः सब दिन के लिये ही इसी गृह्य अग्नि में सायं और प्रातःकाल होम कहा गया समझो ॥ ६ ॥

प्रागस्तमयोदयाभ्यां प्रादुष्कृत्य । ७ ।

अस्तमयोदयात् प्राक् समीपकाले प्रज्वाल्य ॥ ७ ॥

अस्तमिते होमः । ८ ।

अस्तमयानन्तरमेव होमः ॥ ८ ॥

उदिते चानुदिते वा ॥ ९ ॥

सन्ध्यायामेव ॥ ६ ॥

भा०—सूर्यास्त से पहिले सायंकाल और सूर्योदय से पहिले प्रातःकाल में अग्नि को भलीभांति प्रज्वलित कर सूर्योदय के पीछे या सूर्य उदय हो रहा हो ऐसे समय उसमें आहुति प्रदान करे ॥७॥८॥६॥

हविष्यस्यान्नस्याकृतं चेत् प्रक्षाल्य जुहुयात्पाणिना ।१०।

हविष्यस्यान्नस्य मापवरकादिद्रव्यव्यतिरिक्तस्य लवणाद्यसंयुक्तस्य येषुकेषुचिद्धोमेषु साधनतया श्रुतस्यौदनस्य षष्ठीनिर्देशात्तदेकदेशस्य साधनतयोपादानम्। न पक्वावस्थस्य कृत्स्नस्योपादानम्। अतः पाकधर्मा न स्युः। इतरथा शङ्का स्यात्, दर्शपूर्णमासादौ दर्शनात्। अकृतं अपक्वं उक्तजातीयानेव तण्डुलांस्त्रिः प्रक्षाल्यांगुष्ठपर्वमात्रप्रमाणामाहुतिं जुहुयात्। होमसामान्यात् स्रुवस्य प्राप्तौ पाणेर्विधानम् १०

भा०—तण्डुल या फलादि ही हवनीय हो तो उन सबको अच्छे प्रकार धोकर जल भीगे ही दशा में हाथ से हवन करे ॥ १० ॥

दधि चेत्पयो वा कंसेन । ११

चेदिति सिद्धवद्व्यपदेशः शास्त्रान्तरविहितस्यापि द्रव्यस्य संग्रहणार्थः। अतः आज्यमपि द्रव्यम्। पृथग्ग्रहणमितरेतरसंयोगव्युदासार्थम् ॥ ११ ॥

चरुस्थाल्या वा । १२

कंसेन विकल्पः ॥ १२ ॥

भा०—यदि दही, दूध या यवागू, होम करना हो तो उसके धोने की आवश्यकता नहीं, जैसा हो उसी प्रकार बिन धोये ही कांस्य पात्र या चरुस्थाली में रख के उससे या स्रुवा से हवन करे ॥११॥१२

अग्नये स्वाहेति मध्ये । १३

अग्निमध्ये सायंकाले ॥ १३ ॥

भा०—और पहली आहुति "अग्नये स्वाहा" अग्नि के बीच में सायंकाल में करे ॥ १३ ॥

तूष्णीं प्रागुदीचीमुत्तराम् ।१४।

मन्त्रमनुच्चारयन्नग्नावेव प्रागुदीच्यां दिशि द्वितीयां जुहुयात्। सायंप्रातर्होमस्य देवतासाध्यत्वात् ययाकयाचित्प्राप्तौ तूष्णींधर्मस्य प्रजापतावसाधारण्यात् प्रजापतये स्वाहेति मनसा स्मरन् जुहुयात्। 'तस्मात्प्राजापत्यां मनसा जुह्वति' इति श्रुतेः। तूष्णींधर्मत्वं प्रजापतेरेव या प्रागुदीची आहुतिर्दर्शपूर्णमासयोः 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इति तामत्र जुहुयादिति केचित्। तदयुक्तम्—वक्ष्यमाणस्य सिद्धवद्व्यपदेशायोगात्, असाधारणशब्दाभावाच्च। पश्चाद्विधानादेवोत्तरत्वे सिद्धे उत्तरामिति यत्र यत्रैकाहुतिश्चोद्यते तत्र तत्रैषैवोत्तरा स्यादित्येवमर्थम् ॥ १४ ॥

भा०—और दूसरी आहुति ईशान कोण में विना मन्त्र ही करे ॥१४

सूर्यायेति प्रातः पूर्वाम् । १५

सूर्याय स्वाहेत्यग्निमध्ये ॥ १५ ॥

भा०—"सूर्य्याय स्वाहा" मन्त्र से अग्नि के बीच प्रातःकाल में हवन करे ॥ १५ ॥

नात्र परिसमूहनादीनि पर्युक्षणवर्जम् । १६

बहुवचनमुपरिष्टाद्धोमानां समिदाधानादेश्च निवृत्त्यर्थम्। समन्तात् परिषेचनं, पुरस्तादुपरिष्टाच्च पर्युक्षणम्। उत्तराहुत्यनन्तरमुभयत्र समिधमादध्यादित्युपदेशः। पूर्वाहुतेः पूर्वमिति केचित् ॥ १६ ॥

भा०—प्रातःकाल और सायंकाल के हवन के लिये परिसमूहन आदि पर्युक्षण को छोड़कर हवन करे ॥ १६ ॥

पत्नी जुहुयादित्येके । १७

गृह्याः पत्नी गृह्योऽग्निरेष इति । १८

स्पष्टे ॥ १७-१८ ॥

भा०-किन्हीं आचार्यों का मत है कि पत्नी ही हवन करे ॥१७॥

भा०-पत्नी को गृह्या कहते हैं और इस अग्नि को भी "गृह्य" कहते हैं अतएव पत्नी ही दोनों समय हवन किया करे ॥ १८ ॥

सिद्धे सायंप्रातर्भूतमित्युक्त ओमित्युच्चैर्ब्रूयात् ॥ १९

भोजनार्थमोदने सिद्धे भोजनकालस्य परतन्त्रत्वान्न पूर्वाह्णनियमः, कालस्योपलक्षणत्वाच्च । अतत्यपि भोजनार्थे पाके पाकं कृत्वा भवत्येव तस्मिन् काले होमः । सायंप्रातरिति रात्रावहनि चेत्यर्थः। प्रकृतितस्सिद्धे वचनं परिचरणतन्त्रेषु कालप्राप्तिर्नास्तीति द्योतनार्थम् । पचनकर्त्रा भूतमित्युक्ते गृहपतिरोमिति ब्रूयात् ॥ १९ ॥

भा०-प्रातःकाल और सायंकाल के हवन जब भोजन तैयार हो और पाक करने वाला कहे कि तैयार हुआ तो घर का मालिक 'ओम्' कहे उसी समय हवन करे ॥ १९ ॥

माक्षा नमस्त इत्युपांशु । २० ।

ब्रूयादित्यनुवर्तते ॥ २० ॥

भा०-हवनादि यज्ञ कार्य में यज्ञकर्त्ता कर्म सम्बन्धी बातें करे इसके अतिरिक्त लौकिक बातें न करे । यदि लौकिक बातें करे तो प्रति वार "तस्मै तन्माक्षाः" नीचे स्वर से मन ही मन कहे और ऊँचे स्वर से 'ओम्' कहे ॥ २० ॥

हविष्यस्यान्नस्य जुहुयात् प्राजापत्यं सौविष्टकृतं च । २१ ।

परिचरणतन्त्रेण । प्रकृतितस्सिद्धे हविष्यस्येति अहविष्य-भोजने भोज्यसंस्कारप्रयुक्तभ्रान्त्या तेनापि होम आशङ्क्येतेति तन्निवृत्त्यर्थम् । प्रजापतये स्वाहेति मनसाऽग्निमध्ये, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति प्रागुदीच्यां जुहुयात् ॥ २१ ॥

भा०-पाक तैयार होने पर उस हविष्यान्न में से कुछ लेकर हविष्य व्यञ्जन के साथ उसी अग्नि में विना मन्त्र पढ़े एक आहुति देवे। इस आहुति में स्रुवा आदि की अपेक्षा नहीं हाथ ही से करे॥ और "प्रजापतये स्वाहा" मन ही मन कर पहिली आहुति देवे और स्विष्टकृत् देवता को "स्विष्टकृते स्वाहा" मन्त्र से दूसरी आहुति देवे ॥२१॥

बलीन्नयेत् । २२ ।

वक्ष्यमाणेषु देशेषु निदध्यात्॥ २२ ॥

भा०-आगे कहे जाने वाले स्थानों में बलियों को रक्खे ॥२२॥

बहिरन्तर्वा चतुर्निधाय । २३ ।

गृह एव गर्भगृहात् बहिरन्तर्गृहे वा। चतुरिति ग्रहणात् बलिचतुष्टयार्थमादावन्ते च सकृदेव परिषेचनम् । प्रत्येकमिति केचित्॥ २३ ॥

भा०-घर के भीतर या भीतरी घर के बाहर ४ स्थानों में ४ अलग २ बलि रक्खे ॥ २३ ॥

मणिकदेशे । २४ ।

उदकधारणसमीपे ॥ २४ ॥

भा०-एक जल देवता के लिये जहां घर के काम के लिये जल रक्खा जाता हो ॥ २४ ॥

मध्ये । २५ ।

गर्भगृहमध्ये ॥ २५ ॥

भा०-दूसरा भीतरी घर के बीच में ॥ २५ ॥

द्वारि । २६ ।

गर्भगृहस्यैव ॥ २६ ॥

भा०-फिर भीतरी घर के दरवाजे पर ॥ २६ ॥

शय्यामनु । २७ ।

शयनदेशसमीपे ॥ २७॥

भा०-एक बलि शयन करने के शय्या के बगल में ॥ २७ ॥

वर्चं वा । २८ ।

अन्वित्यनुवर्तते । अनुवर्चं अवस्करदेशसमीपे । वाशब्दो विनिवेशार्थः, शय्यामनु नक्तम्, वर्चमनु दिवा देशोचित्याद्देवतौचित्याच्च ॥ २८ ॥

भा०–एक बलि जहां घर का बहारन कूरे की जगह हो वहां रक्खे ॥ २८ ॥

अथ सस्तूपम् । २९ ।

अन्वित्यनुवर्तते । अथेति वक्ष्यमाणानां सर्वेषां बलीनामेष एव देश इत्येवमर्थम् । प्रथमस्थापितः स्थूणः सस्तूपः । तमनु तत्समीपदेशे ॥ २९ ॥

भा०–एक बलि घर में पहिले से स्थापित स्थूण (खूंटा) के पास देवे ॥ २९ ॥

एकैकमुभयतः परिषिञ्चेत् । ३० ।

आदौ बलेरभावात् परिषेकशब्दानन्वयादद्भिस्सेचनमात्रम् । सिक्ते बलिं निधाय प्रागुपक्रमं प्रदक्षिणं परिषिञ्चेत् ॥ ३० ॥

भा०–एक २ भाग करके ही बलि स्थापन करे और प्रत्येक के रखने के पहिले एकवार और पीछे एकवार जल छिड़के ॥ ३० ॥

शेषमद्भिस्सार्धं दक्षिणा निनयेत् । ३१ ।

बलिस्थाल्यां शिष्टमन्नमद्भिस्सह सस्तूपस्य दक्षिणतः प्राचीनावीती पित्र्येण तीर्थेन निनयेत् ॥ ३१ ॥

भा०–उसके बाद पात्रस्थ बचे हुये अन्न को जल में धोकर हाथ की पैत्र अंगुली से दक्षिण की ओर फेंके, वह बलि पितृगण के लिये होगा ॥ ३१ ॥

फलीकरणानामपामाचामस्येति विश्राणिते ॥३२॥

कणानुदकमोदनावस्रंसनं च मिश्रीकृत्य विगतश्रमेऽतिथौ 'अग्रं ब्राह्मणाय दत्वा' इत्यस्यानन्तरमित्यर्थः । सस्तूपस्य प्रागुदीच्यां दिशि रौद्रत्वात् ॥ ३२ ॥

भा०–यह बलि, यव या भात के मांड से तैयार करे और "रुद्राय नमः" मन्त्र को पढ़कर रुद्र देवता के नाम ईशान कोण में बलि देवे ॥ ३२ ॥

पृथिवी वायुः प्रजापतिर्विश्वेदेवा आप ओषधिवनस्पतय आकाशः कामो मन्युर्वा रक्षोगणाः पितरो रुद्र इति बलिदैवतानि ॥ ३३ ॥

उक्तानां बलीनां यथासङ्ख्यमेता देवताः। कामो मन्युर्वेति पूर्ववद्विनिवेशः ॥ ३३ ॥

भा०–पूर्वोक्त बलियों के देवता ये हैं—पृथिवी, वायु, प्रजापति, विश्वेदेवा, आप, ओषधि, वनस्पतय, आकाश, काम या मन्युः रक्षोगण, पितर और रुद्र ये ॥ ३३ ॥

तूष्णीं तु कुर्यात् ॥ ३४ ॥

तुशब्दोऽवधारणार्थः। बलिदैवतान्येव तूष्णीं न होम इति। होमेऽपि प्राजापत्यां मनसैव, 'तस्मात् प्राजापत्यां मनसा जुहोति' इति श्रुतेः। कुर्यादिति मनोव्यापारमात्रार्थम्। पृथिव्यै वायवे प्रजापतये विश्वेभ्यो देवेभ्योऽद्भ्य ओषधिवनस्पतिभ्य आकाशाय कामाय मन्यवे रक्षोगणेभ्यः पितृभ्यो रुद्रायेति। चतुर्थ्यन्तं मनसा स्मरन् बलिं निदध्यात् ॥ ३४ ॥

भा०–इन देवताओं के नाम मन ही मन लेकर बलि देवे। जैसे 'पृथिव्यै नमः', 'वायवेनमः', 'प्रजापतये नमः', 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः', 'अद्भ्यो नमः', 'ओषधि वनस्पतिभ्यो नमः', 'आकाशायनमः' कामायनमः', 'मन्यवे नमः', 'रक्षोगणेभ्यो नमः', 'पितृभ्यो नमः' 'रुद्राय नमः' मन से इनको स्मरण करता हुआ बलियां अलग २ देवे ॥ ३४ ॥

सर्वस्य त्वन्नस्यैतत्कुर्यात्। ३५।

सर्वस्येति शाकमांसादिपरिग्रहणार्थम्। इतरथा ओदनस्यैव स्यात्। प्रकृतावौपासनहोमे दर्शनात्। अन्नस्येति अदनीयस्य।

तुशब्द एवकारार्थे। भोजनार्थस्यैव न दर्शपूर्णमासादिचरोः कृसरस्थालीपाकादेश्चेत्यर्थः। एतदिति। सकलवैश्वदेवकर्मपरामर्शार्थम्, इतरथा हि प्रकृतत्वात् बलीनामेव एष विशेषस्स्यात्। कुर्यादिति अनग्नेरपि लौकिके करणार्थम्॥ ३५॥

भा०—पितृ कार्य के लिये हो या ब्राह्मण भोजनादि कल्याण कार्य के लिये हो या अपने खाने के लिये हो सब ही प्रकार के अन्न से बलि दे सकते हैं॥ ३५॥

असकृच्चेदेकस्मिन् काले सिद्धे सकृदेव कुर्यात्। ३६।

रात्रावन्हि वा यदि पाकावृत्तिः स्यात् तदा एकदैव कुर्यात्।३६।

भा०—यदि एक ही समय में कई बार भोजन बनाना पड़े तो बलिकर्म केवल एक ही बार करना चाहिये॥ ३६॥

बहुधा चेद्यद्गृहपतेः। ३७

युगपत् क्रमेण वा यदि बहवः पाकाः स्युः तदा यद्गृहपतेर्भोजनार्थं तस्यैव कुर्यात्। यदि गृहपतेरपि बहवः तदाऽप्येकस्यैव। ३७।

भा०—यदि एक मकान में एक वंश के अनेक व्यक्ति भिन्न २ पाक करके रहते हों तो उनमें से जो सबसे श्रेष्ठ होने से घर के मालिक हों, वही पाकशाला से इस बलि कार्य को करे अन्य महानस वाले न करें॥ ३७॥

सर्वस्य त्वन्नस्याग्नौ कृत्वाऽग्रं ब्राह्मणाय दत्त्वा स्वयं कुर्यात्॥ ३८॥

सर्वस्येति अहविष्यस्यापि परिग्रहणार्थम्। अन्नस्येति पक्वोपलक्षणार्थम्, अपक्वान्ननिवृत्तये च। अग्नाविति लौकिकाग्न्यर्थम्। तुशब्दो विशेषणार्थः। न पूर्ववदेकस्यैव, किंतु सर्वेषामेव पक्वानां किंचित्किञ्चित् गृहीत्वैकीकृत्य तूष्णीं लौकिकेऽग्नौ द्वे आहुती निदध्यादित्यर्थः। भोज्यसंस्कारार्थमेतत्। अग्रं प्रथमं ब्राह्मणाय, ततो वर्णान्तरेभ्यो यथाक्रमेण, तस्योपलक्षणार्थत्वात्। प्रतिवर्णमपि श्रेयसे पूर्वं दद्यात अयं चार्थः—'सर्वान्वैश्वदेयान्ते भागिनः कुर्वीत' इत्येवमादीनि वाक्यान्यालोच्य न्याय्य उक्तः। अवश्यकार्यमेतद्दानं पक्वस्य यथासम्भवं भृत्यानामनुरोधेन। चतुर्थ्यैव सिद्धे दत्त्वेति यथासम्भवं दानमात्रे

निवृत्तेऽपि स्वभोजनाभ्यनुज्ञानार्थं,नावश्यं तेषां भोजनपरिसमाप्तिः प्रतीक्षणीयेति। दत्त्वेति समानकर्तृकत्वं स्वभोजने नित्यसम्बन्धार्थम्। असति स्वभोजने नावश्यकार्यमेतद्दानमिति। असत्यपि स्वभोजने सर्वकालसाधारण्येन येभ्योऽवश्यं दानमुक्तं 'सान्तानिकं यक्ष्यमाणम्' इत्यादिना तेभ्यो दद्यादेव। स्वयंग्रहणमात्मन एवानन्तर्यनियमार्थं, न तु भृत्यादीनामिति। भृत्यानामागतैस्सहापि भोजनम्। तथा भार्याया अपि गर्भिण्या रोगिण्याश्च। स्वस्थायास्तु स्वभोजनानन्तरमेव। भुञ्जीतेति वाक्यशेषात् सिद्धे कुर्यादिति वचनं सत्कारमपि तेषां कुर्यादित्येवमर्थम्। स्मृत्याचारसिद्धस्य सूचनमात्रमेतत्सूत्रम्॥ ३८॥

भा०—यदि एक घर में अनेक पाक वाले रहते हों तो उनमें से जिसका भोजन सबसे पहिले तैयार हो वही थोड़ा अन्न अग्नि में डाल कर पके अन्न में से पहिले ब्राह्मण को, श्रेष्ठ अतिथि को देकर तब स्वयं भोजन करे॥ ३८॥

व्रीहिप्रभृत्या यवेभ्यो यवेभ्योवाऽऽव्रीहिभ्यः स्वयं हरेत् स्वयं हरेत्। ३९।

सायं प्रातर्होमवर्जं स्वयं हौत्रम्, इति कर्तुरनियमे प्राप्ते व्रीहिसम्पत्तिप्रभृति यवसम्पत्तिप्रभृति वा षट्सु मासेषु स्वयं कर्तृत्वं नियम्यते। हरेदिति सहोमस्य बलेरुपलक्षणार्थम्॥ द्विरुक्तिः पटलसमाप्तिद्योतिका॥ ३९॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमस्य पञ्चमः खण्डः

समाप्तश्च प्रथमपटलः॥ १। ५।

भा०—अब 'काम्य बलि' कहते हैं यदि अपने को बहुत दिन तक जीने की इच्छा हो तो 'आशस्य' नामक बलि देवे। अर्थात जिस समय तक हेमन्त ऋतु का धान्य-शस्य (खेत में लगा हुआ अन्न) तैयार न हो तब तक यव के अन्न होने के पहिले और उसके बाद जब तक यव शस्य तैयार न हो तब तक धान्य की उत्पत्ति के निकट एक बलि देवे॥ ३९॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्र के पहिले पटल के पञ्चम खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ और पहिला पटल भी पूरा हुआ॥ १॥ ५॥

पौर्णमासोपक्रमौ दर्शपूर्णमासौ ॥१॥

नित्यप्रकरणे विधानादधिकारानुक्तेश्च सायंप्रातर्होमवत् नित्यावेतौ। तद्वदेवाधिकारैक्यं च यावज्जीवं यावदाश्रमं यावदाधानं वा। अतो नान्तरा ब्राह्मणभोजनम्। सूर्याचन्द्रमसौ यस्मिन् क्षणे सह वसतः स दर्शः। यस्मिन् क्षणे चन्द्रमाः पूर्यते सर्वाभिः कलाभिः स पूर्णमासः। तत्कालसम्बन्धौ प्रयोगौ दर्शपूर्णिमावाविति लक्ष्येते। न चैकस्मिन् क्षणे, किन्त्वपराह्ण उपक्रमानन्तरे पूर्वाह्णे समाप्तिर्युक्तेति, तस्मान्मध्यन्दिनादूर्ध्वमागामिमध्यन्दिनाच्च पूर्वमसौ क्षणोऽस्ति, असौ कालो लक्ष्यते, अत एतत्कालवर्तिनौ प्रयोगौ कुर्यादित्यर्थः। वक्ष्यमाणसूत्रद्वयेनैव सिद्धे पौर्णमासोपक्रमाविति मध्ये मरणशङ्कायामपि दर्शनियमार्थम्, उपक्रमस्योपसंहारापेक्षत्वात्। एवं 'सायमाहुत्युपक्रमम्' इत्यत्रापि द्रष्टव्यम्। समाप्तिप्रकार उक्तो निदाने "तदप्यपरपक्षे' इत्यारभ्य। मृतेऽप्येवमेव समाप्य संस्कर्ता संस्कुर्यात् ॥ १ ॥

भा०—नित्य कर्मों के प्रकरण में जैसे सायं प्रातःकाल का होम नित्य है उसी प्रकार दर्श और पौर्णमास याग जीवन भर करना चाहिये सूर्य और चन्द्रमा जिस क्षण में एक साथ रहते हैं उसको "दर्श" या 'अमावस्या' कहते हैं। और जिस समय चन्द्रमा सब कलाओं से पूरे होते हैं उस समय का नाम पूर्णमासी है। दर्श काल सम्बन्धी याग को 'दर्श' (याग) और पूर्णिमा सम्बन्धी याग को 'पूर्णमास' (याग) कहते हैं ॥ १ ॥

दार्शं चेत्पूर्वमुपपद्येत पौर्णमासेनेष्ट्वाऽथ तत्कुर्यात् ॥२॥

चतुर्थीहोमानन्तरं यदि दर्शः पूर्वमागच्छेत् तदा दर्शकालात् पूर्वमेव पौर्णिमासं कृत्वा स्वकाले दर्शं कुर्यात् ॥ २ ॥

भा०—चतुर्थी होम के अनन्तर यदि 'दर्श' पहिले आ जावे तब दर्श काल से पहिले पौर्णमास करके अपने काल में दर्श याग करे ॥२॥

अकुर्वन् पौर्णमासीमाकाङ्क्षेदित्येके ॥ ३ ॥

पूर्वोपपन्नमेकदेशम्। आगामिनीं पौर्णमासीमाकाङ्क्षेदित्येक आहुः। तामारभ्यानुष्ठानं स्पष्टम् ॥ ३ ॥

भा०—किन्हीं आचार्यों का मत है कि यदि पौर्णमास याग को न करे तो आने वाली पौर्णमासी की प्रतीक्षा करे अर्थात् पौर्णमास याग का आरम्भ करके दर्श याग करे ॥ ३ ॥

अपराह्णे स्नात्वौपवसथिकं दम्पती भुञ्जीयाताम् ॥ ४ ॥

स्नानमपि मध्यन्दिनादूर्ध्वमेव, कर्माङ्गं तु तत्। यजनीयात्पूर्वमहः उपवसथं तदहर्योग्यं यच्छाखान्तरदृष्टमशनीयं तदौपवसथिकम्। तदुक्तं मांसमद्ये नाश्नीयाताम् इति ॥ ४ ॥

भा०—दिन के दोपहर के अनन्तर स्त्री पुरुष स्नान करके उपवास के दिन करने योग्य भोजन करें (निषिद्ध भोजन—जैसे मांस और मदिरा का भोजन न करें) ॥ ४ ॥

मानतन्तव्य उवाच श्रेयसीं प्रजां विन्दते काम्यो भवत्यक्षोधुको य औपवसथिकं भुङ्क्ते ॥ ५ ॥

मानतन्तव्य इति ऋषिः। विन्दते लभते। काम्यः प्रियदर्शनः अक्षोधुकः क्षुत्पिपासारहितः ॥ ५ ॥

भा०—मान तन्तव्य नामक ऋषि कहते हैं कि जो कोई यजमान उपवास दिन में उस दिन के नियमानुसार यदि भोजन न करे तो उस की सन्तति पाप बुद्धि होगी और क्षुधा से आकुल होकर यागानुष्ठान में मन चञ्चल रहेगा इसलिये यदि अच्छी सन्तान पाने की इच्छा हो तो उपवास दिन के भोजन करने योग्य पदार्थ खावे और भूख प्यास से रहित होकर याग करे ॥ ५ ॥

तस्माद्यत्कामयेत तद्भुञ्जीत ॥६॥

यदीच्छेत् प्रजादीनि तदौपवसथिकं भुञ्जीत। नित्यादेवानुषङ्गिकं फलमिदं, स्तुतिमात्रं वा। रात्रौ न भोजनम्, अपराह्णग्रहणस्य सर्वाहर्नियमार्थत्वात्। यतो रागप्राप्तस्यायं नियमः अत उपवासेऽपि न वैगुण्यम् ॥ ६ ॥

भा०—भूखे प्यासे रहकर याग करने में जो फल होता है और भोजन कर के याग करने में जो फल होता है उसको कहा गया है इन दोनों पक्षों में यजमान को जैसी इच्छा हो वैसा करे ॥ ६ ॥

नाव्रत्यमाचरेत् ॥ ७ ॥

व्रतविरोधि मधुमांसभक्षणादि न कुर्यात् आ प्रयोगसमाप्तेः ॥७॥

भा०—जब तक याग क्रिया की समाप्ति न हो तब तक याग कर्त्ता व्रतविरोधि मदिरा मांस का भक्षण न करे ॥ ७ ॥

प्रातराहुतिं हुत्वा ॥ ८ ॥

दर्शपूर्णमासौ कर्तव्याविति शेषः । अनयोः पूर्वेद्युरुपक्रान्तत्वात् प्रातराहुतेश्च 'सर्वमहः प्रातराहुतः स्थानम्' इत्यस्तमयात् कालाभ्यनुज्ञानात् प्रातराहुतिः पश्चात् स्यादिति तन्निवृत्तये पूर्वत्वं नियम्यते ॥८॥

भा०—दर्श और पौर्णमास इन दो यागों के पहिले उस दिन की प्रातःकालिक आहुति कर लेवे तब कर्तव्य याग करे ॥ ८ ॥

हविर्निर्वपेदमुष्मै त्वा जुष्टं निर्वपामीति देवताश्रयं सकृद्यजुषा द्विस्तूष्णीम् ॥ ९ ॥

यद्धविश्शास्त्रान्तरे प्रज्ञातं व्रीहितण्डुला यवतण्डुला वा तद्धविः पाणिना गृहीत्वा मुष्टिपूर्णं 'अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि'इति निर्वापवद्यथादैवतं चरुस्थाल्यां सकृदावपेत् द्विरमन्त्रकम् । ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा निर्वापः, अस्यापि ब्रह्मापेक्षत्वात् ॥ ६ ॥

भा०-उसके वाद हवि पाक के उपयोगी करने के लिये धान्य हो या यव उसको हाथ से पकड़ कर मुट्ठी भर ले २ कर "अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि" मन्त्र पढ़कर एकवार और दो वार बिना मन्त्र के यों तीन ही वार में हवियोग्य धान्य या यव को ओखरी में डाले । परन्तु पहली वार में जो मन्त्र पढ़ा जाता है वह मन्त्र जिस देवता के निमित्त हो उसी देवता का मन्त्र होना चाहिये ॥ ६ ॥

त्रिर्देवेभ्यः प्रक्षालयेत् ॥ १० ॥

उदकेन प्रक्षालनम् प्रकृतत्वात्सिद्धे देवेभ्य इत्यन्यत्रापि यद्देवेभ्यः प्रक्षालनं तत्त्रिरेवेत्येवमर्थम् । यथौपासनहोमे ॥ १० ॥ अथ प्रक्षालन प्रसङ्गादुच्यतेः—

द्विर्मनुष्येभ्यः ॥ ११ ॥

भोजनार्थे पाके द्विः प्रक्षालनम् । असत्यपि पाके यत्र प्रक्षालनं विहितं तत्रापि द्विरेव ॥ ११ ॥

सकृत्पितृभ्यः ॥ १२ ॥

श्राद्धेऽन्वष्टक्यादौ च असत्यपि पाके पूर्ववत् ॥ १२ ॥

अथ प्रकृतमाह:—

भा०–इसके बाद उलूखल के पीछे पूर्व मुँह खड़े होकर दोनों हाथों से मूसल पकड़ कर कूटे । कूटने पर तुष वियुक्त धान्य या यव के तण्डुल आदि को तीनवार साफ कूटकर देवता के लिये, ब्राह्मण भोजनादि मनुष्य कार्य के लिये दो वार और पितृ कार्य के लिये एक ही वार जल में धो लेवे ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

मेक्षणेन प्रदक्षिणमुदायुवं श्रपयेत् ॥ १३ ॥

मेक्षणं दर्वी । यथा पंक्तिवैषम्यमुदकस्य वा बहिर्निर्गमनं न भवेत् तथोदायुवं पचेत् । यदि बहिर्निर्गच्छेत् उदकं 'ययोरोजसा' इत्यप आसिञ्चेत्, यद्यन्न उल्वणं क्रियते तदप उपनिनयेत् 'ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठाः । यावत्येते अप्रतीता सहोभिः विष्णो अगन्वरुणा पूर्वहूतौ स्वाहा' इति श्रुतेः ॥ १३ ॥ अस्मिन् काले परिस्तरणम्, आज्यसंस्कारश्च, संस्कारापेक्षत्वात् शृताभिघारणस्य । तत आह–

भा०–मेक्षण नाम करछुल से स्थाली में इस भांति चारों ओर घुमा २ कर चलावे जिसमें जल और तण्डुल मिल जावे और पात्र से बाहर न गिरे ॥ १३ ॥

शृतमभिघार्योदगुद्वास्य प्रत्यभिघारयेत् ॥ १४ ॥

स्रुवेणाज्येनाभिघारणम् ॥ १४ ॥

भा०–जब पाक प्रस्तुत हो जावे तब घी का ढार दे अग्नि के उत्तर में उतार कर फिर उसमें भागानुसार घी मिलावे ॥ १४ ॥

सर्वाण्येवं हवींषि ॥ १५ ॥

सर्वाणीति व्याप्त्यर्थम् । एवं निर्वापादि । हवींषीति भोजनार्थे श्राद्धार्थे कृसरस्थालीपाकादौ च निवृत्त्यर्थं, न हि तेषु पाकावस्थायां हविष्ट्वं, देवतोद्देशाभावात् । औपासनवैश्वदेवहोमयोरप्येकदेशस्यैव

देवतोद्देशेनोपादानं 'अन्नस्य' इति षष्ठीनिर्देशात्। अतस्तयोरपि पाकावस्थायां न हविष्ट्वम्॥ १५॥

बर्हिषि साद्य॥ १६॥

साद्यानीत्यर्थः। छान्दसः शेर्लुक्। बहुवचनात् सर्वाण्येव होमाङ्गानि साद्यानि, आज्यं चरुः स्रुवः जुहूः इध्म इति। बर्हिषीति सिद्धवन्निर्देशात् स्तरणावस्थायामेव तथा स्तरणं यथा तत्र सादनं भवेत्। इतरेतरयोगाच्च हविरसादनावस्थायामेव उत्तरतस्सर्वेषां सादनम्। बहुलवचनाल्लुक् कृतोऽस्य बहुविषयत्वं गमयितुम्। अतो विवाहादिष्वपि होमाङ्गानामेव सादनम्। औपासनादिषु दर्भाभावादुत्तरतो भूमावेव सादनं प्राक् पर्युक्षणात्। एवं प्रयोगक्रमः—प्रातराहुतिं हुत्वा ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा चरुं श्रपयित्वा परिस्तीर्य दर्भेषूपविश्याज्यं संस्कृत्याभिघार्य हवींष्युत्तरतस्सर्वाणि सादयित्वा परिषेचनादि प्रपदान्तं कुर्यात्।१६।

तत आह—

भा०—हवन की सारी सामग्री वर्हि नामक कुशों पर यथा प्रयोजन क्रम से रक्खे। जैसे आज्य, चरु, स्रुव, जुहूः, इध्म॥ १५॥ १६॥

आज्यभागौ जुहुयाच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा पश्चात्त्वं भृगूणां जामदग्न्यानामग्नये स्वाहेत्युत्तरतस्सोमायेति दक्षिणतः। १७।

आज्यभागाविति संज्ञा व्यवहारार्था। स्रुवेणादायाज्यं जुह्वामासिच्य जुह्वैव चतुर्गृहीतं जुहुयात्। स्रुवेण स्रुच्याज्यं गृह्णीयात् इति परिभाषादर्शनात् गृह्यान्तरदर्शनाच्च स्रुवजुह्वोः प्राप्तिः। स्रुवस्य तु विवाहप्रकृतित्वादपि प्राप्तिरस्त्येव। गृहीत्वेति प्रत्येकं चतुर्ग्रहणार्थं, पौनःपुन्येऽपि क्त्वाविधानात्॥ १७॥

भा०—जिस समय 'उपस्तीर्णाभिघारित' नामक होम करने की इच्छा हो उसी समय उसके पहिले दो उपघात होम करे। इस उपघात होम के करने में स्रुच् (यज्ञपात्र) के मध्य में प्रतिवार स्रुवा के धारा पर चार वार आज्य लेकर करे। इस चार वार लिये हुये आज्य को

पहिले 'अग्नये स्वाहा" मन्त्र से अग्नि कुण्ड के बीच में उत्तर भाग में और उसके पश्चात् "सोमाय स्वाहा,' मन्त्र से अग्निकुण्ड के दक्षिण भाग में पूर्व दिशा की ओर होम करे। इसमें विशेषता यह होगी कि भृगु और जामदग्न्य गोत्र वालोंको प्रतिहोम में पांच वार आज्य करना चाहिये ॥ १७ ॥

विपरीतमितरे ॥ १८ ॥

सोमाय स्वाहेति दक्षिणतो हुत्वाऽग्नये स्वाहेत्युत्तरत इत्यन्य आचार्या आहुः ॥ १८ ॥

भा०—अन्य आचार्य लोग कहते हैं कि "सोमाय स्वाहा" मंत्र से दक्षिण भाग में होम करके "अग्नये स्वाहा" मन्त्र से उत्तर भाग में होम करे ॥ १८ ॥

आज्यमुपस्तीर्य हविषोऽङ्गुष्ठेनमेक्षणेन मध्यात् पुरस्तादिति ।१९

स्रुवेण जुह्वामुपस्तीर्य हविषोऽङ्गुष्ठपर्वपृथुमात्रमवखण्ड्य हस्तेन जुह्वां निदध्यात्। इतिशब्दः पक्षसमाप्त्यर्थः ॥ १९ ॥

पश्चाच्च पञ्चावत्ती । २० ।

भृगुजामदग्न्यादय· ॥ २० ॥

अभिघार्य प्रत्यनक्त्यवदानस्थानानि । २१ ।

स्रुवेण जुहूस्थं हविरभिघार्य आज्येन अवदानस्थानानि यथाक्रममवनक्त्याज्येन ॥ २१ ॥

भा०—उपघात होम के पीछे उसी स्रुच् से एक वार आज्य लेकर उसके ऊपर मेक्षण से चरु ग्रहण करे। विशेषता यह होगी कि यदि वह भृगु गोत्र वाला हो तो चरु स्थाली के बीच में पश्चार्द्ध से पांचवार चरु ग्रहण करे और यदि वह अन्य गोत्र का हो तो चरुस्थाली के बीच से पूर्वार्द्ध से चार वार ग्रहण करे। पीछे जिस २ स्थान से मेक्षण द्वारा चरु निकाले आज्य द्वारा उसी २ स्थान को सेक करे। जिससे चरु सूख न जावे याग के योग्य रहे। अनन्तर उसी गृहीत चरु के ऊपर फिर आज्य ढारकर उसी ऊपर नीचे आज्य विशिष्ट चरु से 'अग्नये स्वाहा"

मन्त्र से मध्य में हवन करे। इसी को 'उपस्तीर्णाभिघारित होम' कहते हैं ॥ १६ ॥ २० ॥ २१ ॥

न स्विष्टकृतः ॥ २२॥

स्विष्टकृतोऽवदायावदानस्थानं न प्रत्यनक्ति। प्रत्यञ्जनप्रतिषेधादेवेदं सर्वं स्विष्टकृतोऽपि तुल्यमिति गम्यते ॥ २२ ॥

अमुष्मै स्वाहेति जुहुयाद्यदेवत्यं स्यात् ॥ २३ ॥

अग्नये स्वाहेतिवत् यथादेवतमग्निमध्ये जुह्वा जुहुयात्। एतत्प्रधानं, अत एतद्व्यतिरिक्तं सर्वं चरुतन्त्रेषु प्रवर्तते ॥ २३ ॥

भा०—स्विष्टकृत् होम के लिये चरुग्रहण करके, उस चरु को ठीक ठीक रखने के लिये आज्य सिञ्चन करना आवश्यक नहीं। इसी गृहीत होमीय को "अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" मन्त्र से (या जिस देवता के लिये हवन हो उनके मन्त्र से) अग्नि के उत्तरार्द्ध के पूर्वार्द्ध में हवन करे इसी को स्विष्टकृत् होम कहते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

स्विष्टकृतस्सकृदुपस्तीर्य द्विर्भृगूणां सकृद्धविषो द्विरभिघार्याग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति प्रागुदीच्यां जुहुयात् ॥ २४ ॥

शोभनमिष्टं द्रव्यप्रतिपत्तिद्वारेण करोतीति स्विष्टकृद्यागः। अतोऽप्रधानमिदम्। सकृदुपस्तीर्येत्यनूद्यते भृगूणां जामदग्न्यानां द्विरुपस्तरणविशेषं विधातुम्। मध्यात्पुरस्तात्पश्चादित्येतेषां प्रत्याम्नायः सकृद्धविष इति। उत्तरार्धादवदानं उत्तरार्धात्स्विष्टकृतः इति श्रुतेः, गृह्यान्तरविधानाच्च। द्विरभिघार्येति सकृत्प्रत्याम्नायः। प्रागुदीच्यामिति मध्यप्रत्याम्नायः। अथोपरिष्टाद्धोमः आज्येन व्याहृतिभिः तिसृभिः प्राजापत्यया च ॥ २४ ॥ तत आह—

भा०—स्विष्टकृत् होमके लिये एकवार उपस्तरण करके तब होम करे परन्तु भृगुगोत्रोत्पन्न व्यक्ति को दो वार उपस्तरण और एकवार होम और दो वार अभिघारण करके "अग्नये स्विष्ट कृते स्वाहा" मन्त्र से अग्नि के मध्य पूर्व उत्तर दिशा में होम करे ॥ २४ ॥

समिधमाधाय ॥ २५ ॥

परिषिञ्चेदित्यध्याहारः। 'समिधमाधायानुपर्युक्षेत्' इति गौतमीयवचनात्। पूर्वनिहितां समिधमग्नावाधाय 'अदितेऽन्वमंस्थाः, अनुमतेऽन्वमंस्थाः, सरस्वत्यन्वमंस्थाः, देव सवितः प्रासावीः' इति पूर्ववत्परिषेचनम्। गृह्यान्तरान्मन्त्रप्राप्तिः॥ २५॥

भा०—अग्नि में समिद् का आधान करके "अदितेऽन्वमंस्था', 'अनुमतेऽन्वमंस्थाः', 'सरस्वत्यन्वमंस्था', 'देव सवितः प्रासावीः' मंत्रों से अनुपर्युक्षण करे॥ २५॥

दर्भानाज्ये हविषि वा त्रिरवधायाग्रमध्यमूलान्यक्तं रिहाणा वियन्तु वय इत्यभ्युक्ष्याग्नावनुप्रहरेत् यः पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा पशूनस्माकं मा हिंसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा इति॥ २६॥

प्रतिपत्तिकर्मेदम्, दर्भानिति द्वितीयानिर्देशात्। अत एव स्तृतान् सर्वान् दर्भान् शिष्ट आज्ये हविषि वा सकृन्मन्त्रमुक्त्वाऽग्राणि मध्यानि मूलानि च क्रमशस्सम्मृज्य पुनश्चैवं द्विस्सम्मृज्याद्भिरभ्युदयाग्रपूर्वं प्रक्षिपेत्॥ २६॥

तद्यज्ञवास्तु॥ २७॥

तत् पूर्वसूत्रोक्तं कर्म यज्ञवास्तु। संज्ञा व्यवहारार्था॥ २७॥

भा०—दर्श पूर्णमासादि याग में और एक कार्य करना पड़ता है उसको 'यज्ञवास्तु' कहते हैं। वह पूर्वोक्त प्रकारसे समिद् आधान प्रभृति पर्युक्षण तक कर्म के पीछे किया जायगा। जैसे आस्तृत कुशों में एक मुट्ठी कुश लेकर आज्य या चरु में अग्र, मध्य, मूल, इस क्रम से 'अक्तं रिहाणा' मन्त्र को पढ़के तीन वार जल सींचे। उसके अनन्तर जल से सिंचन करके 'यः पशूनामधिपतिः' इत्यादि मन्त्र पढ़कर उसे अग्नि में छोड़ देवे॥ २६॥ २७॥

सर्वत्र कुर्यात्॥ २८॥

समिद्दर्भवत्सु कर्मसु सर्वत्र कुर्यात्। अध्याहारातिसिद्धे कुर्यादिति वामदेव्यगानार्थम्॥ २८॥

भा०—समिद् आधान और कुश वाले सब ही कर्मों में उक्त विधि करे ॥ २८ ॥

हविरुच्छिष्टमुदगुद्वास्य ब्रह्मणे दद्यात् ॥ २९ ॥

हविर्ग्रहणमाज्यव्युदासार्थम् । उच्छिष्टमिति स्वयं किञ्चित्प्राश्यावशिष्टस्य दानार्थम् । पूर्वमेवोदग्देशस्थितत्वे सिद्धे उदग्ग्रहणमुदग्देशात्स्थाल्या सहोद्वासनार्थं, अन्यथा स्थाल्या ओदनस्योद्वासनमाशंक्येत । चतुर्थ्यैव सिद्धे दद्यादिति स्वयं ब्रह्मत्वेऽप्यन्यस्मै दानार्थम् ॥ २९ ॥

भा०—यज्ञ का शेष कार्य कहा जाता है । पहिले इस महाव्याहृति होम के पीछे बचे हुये चरु को अग्नि के उत्तर दिशा में रखकर उसी चरुस्थाली से दूसरे पात्र में चरु लेकर ब्रह्मा नामक ऋत्विज् को देवे ॥ २९ ॥

पूर्णपात्रं दक्षिणा ॥ ३० ॥

ओदनेन तण्डुलैर्वा तदभावे फलैर्वा सम्पूर्णं पात्रं ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात् । स च तूष्णीं ओमिति वा प्रतिगृह्णीयात् ॥ ३० ॥

भा०—तब भात या चावल या उसके अभाव में फलों से भरा पूर्ण पात्र ब्राह्मण को दक्षिणा में देवे और ब्राह्मण चुपचाप या 'ओम्' कहकर उसको ग्रहण करे ॥ ३० ॥

यथोत्साहं वा ॥ ३१ ॥

यथा ब्रह्मा उत्साही भवति तथा दद्यात् । तदभिलषितं दद्यादित्यर्थः । आज्यतन्त्रेष्वपि यथोत्साहमेव दक्षिणा ॥ ३१ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ द्वितीयस्य पटलस्य प्रथमः खण्डः ॥ २ । १ ॥

भा०—या ब्रह्मा को उनकी इच्छानुसार अभिलषित पदार्थ दक्षिणा देवे ॥ ३१ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्र वृत्ति में द्वितीय पटल के प्रथम खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ २ । १ । ३१ ॥

प्रकृतस्य प्रधानदेवता आह—

आग्नेयस्थालीपाकोऽनाहिताग्नेर्दर्शपूर्णमासयोः ॥ १ ॥

गृहस्थस्यानाहिताग्नेर्दर्शपूर्णमासयोराग्नेयस्थालीपाकः । 'अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । 'अग्नये स्वाहा' इति होमः ॥ १ ॥

भा०—यदि यजमान अनाहिताग्नि गृहस्थ हो तो उसको दर्शपूर्णमास याग के लिये "आग्नेय स्थालीपाक होगा और "अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' मंत्र से निर्वाप करे और "अग्नये स्वाहा" मन्त्र से होम करे ॥ १ ॥

अग्नीषोमीयः पौर्णमास्यामाहिताग्नेः ॥ २ ॥

'अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । 'अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इति होमः ॥ २ ॥

भा०—और यदि यजमान् अग्निहोत्री हो तो "अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि" मन्त्र से निर्वाप करे । और 'अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' मन्त्र से होम करे ॥ २ ॥

ऐन्द्रो माहेन्द्रो वैन्द्राग्नो वाऽमावास्यायाम् ॥ ३ ॥

इष्टिवद्विनिवेशः । 'इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति 'महेन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति 'इन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । 'इन्द्राय स्वाहा, महेन्द्राय स्वाहा, इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा' इति होमः ॥ ३ ॥

भा०—"इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि" "महेन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि" "इन्द्राग्नीभ्यांत्वा जुष्टं निर्वपामि" मन्त्रों से निर्वाप करे । और "इन्द्राय स्वाहा" "महेन्द्राय स्वाहा" "इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा" मन्त्रों से होम करे । या दर्श या अमावस्या याग में यह विधि करे ॥ ३ ॥

यथा वाऽनाहिताग्नेः ॥ ४ ॥

दर्शे च पौर्णमासे चानाहिताग्नेर्यथा तथेत्यर्थः ॥ ४ ॥

भा०—या दर्श और पूर्णमास याग में अहिताग्नि और अनाहिताग्नि गृहस्थ दोनों यजमान एक ही प्रकार से करे ॥ ४ ॥

सर्वमहः प्रातराहुतेस्स्थानम् ॥ ५ ॥

सर्वमिति पूर्वाह्णासम्भवे अपराह्णेऽपि होमार्थम् ॥ ५ ॥

भा०–यदि प्रातःकाल की आहुति समय पर कारण वश न कर सके तो दिन के किसी भाग में कर सकता है ॥ ५ ॥

रात्रिस्सायमाहुतेः ॥ ६ ॥

स्पष्टम् ॥ ६ ॥

भा०–इसी प्रकार यदि सायंकाल की आहुति समय पर न कर सके तो सारी रात्रि में किसी समय कर सकता है ॥ ६ ॥

सर्वोऽपरपक्षः पौर्णमासस्य ॥ ७ ॥

सर्व इत्युपक्रान्तस्य पूर्वाह्णातिक्रमेऽप्यपराह्णे समाप्त्यर्थम्, तदतिक्रमेऽपि रात्रौ । अनुपक्रान्तस्य तु स्वकाले 'अपराह्णे स्नात्वा' इत्याग्रहरन्तरेऽपि भवत्येव ॥ ७ ॥

भा०–और पूर्णमासी से अमावस्या के पूर्व दिन तक १५ दिनों में से चाहे जिस किसी दिन हो पूर्णमास याग हो सकता है यदि कारणवश समय पर न हो सका हो ॥ ७ ॥

पूर्वपक्षो दार्शस्य ॥ ८ ॥

सर्व इत्यनुवर्तते । आपत्काला एते, अन्यथा 'अस्तमिते होमः' इत्यादेर्वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । उत्तरहोमोपक्रमकालात् प्रागेवैते कालाः आपत्कालत्वाच्च । यथासम्भवं न कालोत्कर्षः कार्यः ॥ ८ ॥

भा०–और अमावास्या से पूर्णमासी के पूर्व दिन तक १५ दिनों में से चाहे जिस दिन हो "दर्श या अमावास्या याग" हो सकेगा ॥८॥

अभोजनेन संतनुयादित्येके ॥ ९ ॥

स्वकालात्यये अभोजनेन तत्कार्यसिद्धिरित्यन्ये आचार्या आहुः । आ स्वकालात्ययादभोजनेन तत्कार्यसिद्धिरित्यर्थः । वाक्यशेषादिसिद्धे सन्तनुयादित्यविच्छेदस्य विवक्षितत्वं दर्शयति । अतः कालात्ययेऽपि प्रायश्चित्तं कृत्वैवोत्तरस्य करणम् । अधिकारैक्ये सति सन्ध्योपासनादिलोपेऽप्यभोजनेनापि सन्तानं भवत्येव ।

वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समतिक्रमे ।

स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ इति मनुवचनाच्च ॥६॥

भा०—कोई २ आचार्य कहते हैं कि किसी याग को नियत समय पर न कर सके तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप उतने समय भोजनका त्याग करने से उस याग का फल होगा ॥ ६ ॥

अविद्यमाने हव्ये यज्ञियानां फलानि जुहुयात् ॥ १० ॥

औपासनहोमेऽग्निपक्वान्यपक्वानि वा । वैश्वदेवे पक्वान्येव । दर्शपूर्णमासयोर्निर्वापादि कृत्वा ॥ १० ॥

भा०—यदि होमीय पदार्थ अन्नादि कारणवश इकट्ठा न कर सके उससे हानि नहीं । फल से भी हवन हो सकता है ॥ १० ॥

पलाशानि वा ११

फलाभावे यज्ञियानां पर्णानि वा जुहुयात् । पूर्ववत्पाकनियमः ॥११॥

भा०—यदि फल भी न हो सके तो पलाश के पत्तों या उसकी लकड़ी से हवन करे ॥ ११ ॥

अपो वा ॥ १२ ॥

सर्वत्रापां प्रक्षालनं श्रपणं च नास्ति अर्थलोपात् ॥ १२ ॥

भा०—यदि पलाश भी न मिल सके तो केवल जल ही से हवन करे ॥ १२ ॥

हुतं हि ॥ १३ ॥

हिशब्दो हेतौ । यस्मादापत्काले मुख्यद्रव्यालाभनिमित्तगौणद्रव्ये च हुते हुतमेव भवति अतो न तत्र वैगुण्यनिमित्तं प्रायश्चित्तमित्यर्थः ॥१३॥ सन्तनुयादित्युक्तं, कथमहुतस्य सन्तानमित्यत आह—

भा०—जिस कारण नित्य कर्म का त्याग सामग्री के अभाव में न हो इस लिये आचार्य ने आपत काल में जल तक से हवन करने को लिखा है । घृत के हवन करने से जो फल होता है वही फल अन्यान्य पदार्थों से भी हो सकता है ॥ १३ ॥

प्रायश्चित्तमहुतस्य ॥ १४ ॥

अतिपन्नकालस्य प्रायश्चित्तं सन्तानार्थं भवतीत्यर्थः । प्रायश्चित्तं

तु प्राजापत्याद्युक्तमेव । सूत्रान्तरमतात्प्रतिहोमं वा कुर्यात् ॥ १४ ॥

भा०—क्योंकि यदि उक्त आपत्कालीय पदार्थों से भी हवन न कर सके तो हवन त्याग करने से प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ॥ १४ ॥

आज्यं जुहुयाद्धविषोऽनादेशे ॥ १५ ॥

आज्य जुहुयादनादेशे इति सिद्धे हविष इति हविषस्संस्कारमपि 'शृतमभिघार्य' इत्यादिष्वाज्यमेव स्यादित्येवमर्थम् ॥ १५ ॥

भा०—हवन कर्मों में जहां यह नहीं लिखा है कि अमुक पदार्थ से हवन करे, वहां आज्य से हवन करे ॥ १५ ॥

देवतामन्त्रानादेशे ॥ १६ ॥

यद्दैवत्यं हविरुक्त' तद्देवताहोममन्त्रस्स्यात् । 'अग्नये स्वाहा' इति वत् ॥ १६ ॥

भा०—जिस होम कर्म में आहुति का मन्त्र उपदिष्ट न हो वहां जिस देवता के लिये हवन किया जावे उन्हीं देवता का मन्त्र समझना चाहिये ॥ १६ ॥

प्रथमगर्भे तृतीये मासि पुंसवनम् ॥ १७ ॥

सर्वगर्भार्थोऽयं संस्कारः आधारसंस्कारद्वारेण सकृदेव क्रियते । भार्यान्तरे तु कर्त्तव्यमेव प्रथमगर्भे । दर्शादूर्ध्वमादर्शादेको मासः । यत्र क्व च दिनेऽप्याहिते गर्भे स एको मासो गणयितव्यः । संज्ञा व्यवहारार्था । कृतनाम्नावेव । मासीति मास इत्यर्थः । अत्र केचित् अतिक्रान्तेऽपि मुख्यकाले प्रसवात् प्राक्कालातिक्रमप्रायश्चित्तं कृत्वा कर्तव्यमेवेत्याहुः, उपनयने दर्शनात्, तेन च स्मृतिषु तुल्यवद्गणनात्, कासुचित्स्मृतिषु कालानिर्देशेन विधानादापत्कल्पतयाऽभ्यनुज्ञानं सर्वदा संस्काराणामस्त्येवेत्याहुः । जननादूर्ध्वं तु द्वाराभावात् प्रायश्चित्तेनैव जातं संस्कुर्यादेकदेशेऽग्नौ । गर्भान्तरार्थं तु द्वितीये गर्भे कुर्यादेव । अपरे तु कालात्यये अधिकाराभावात् प्रायश्चित्तमेवाहुः । पूर्व एव तु पक्षः श्रेयान् । 'अथापि लोपसंशये लोपादलोपो न्यायतरः' इति निदानकारोऽप्याह ॥ १७ ॥

भा०—जिस मास में गर्भाधान हो, उस मास से तीसरे मास के आदि पक्ष के निकट ही पुंसवन नामक संस्कार काल जानो ॥ १७ ॥

स्नातामहतेनाच्छाद्य हुत्वा पतिः पृष्ठतस्तिष्ठेत् ॥ १८ ॥

अहतेन अधरेणोत्तरीयेण च । ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा वधूं दक्षिणतो दर्भेपूपवेश्य प्रपदान्तं कृत्वाऽन्वारब्धायां व्याहृतिभिस्तिसृभिराज्यं हुत्वा पुनश्च हुत्वा वध्वाः पश्चाद्दर्भेपु तिष्ठेत् । पतिरिति भर्तुरभावे पालनाधिकृतनियमार्थम् । भर्तुरन्यः कुर्वन् प्रणीते लौकिके वा कुर्यात् ॥१८॥

भा०—प्रातःकाल उत्तराग्र कुशासन पर उस तीन मास की गर्भ वाली वधू को बैठावे और मस्तक आदि सारा शरीर जल में आप्लुत कर अग्नि के पश्चिम ओर डाले हुये उत्तराग्र कुश के आसन पर बैठावे और उसके पीठ की ओर अर्थात् उसको गोद में लेकर पति भी बैठे ॥१८॥

दक्षिणमंसमन्ववमृश्यानन्तर्हितं नाभिदेशमभिमृशेत्पुमांसाविति ॥ १९ ॥

अन्विति वधूमनुगतः पृष्ठीभूत इत्यर्थः । वध्वा अंसमन्ववमृश्य वस्त्रादिनाऽनन्तर्हितमभिमृशन्नेव पाणिना नाभिं प्रापय्य सकलमेवोदरं मन्त्रेणाभिमृशेत् ॥ १६ ॥

भा०—इसके बाद पति वधू के पीछे बैठकर कन्धे को न छूता हुआ हाथ से सम्पूर्ण उदर के साथ नाभि मर्शन करे ॥ १६ ॥

अथापरं न्यग्रोधशुङ्गामुभयतःफलामस्रामामक्रिमिपरिसृप्तां त्रिस्सप्तैर्यवैः परिक्रीयोत्थापयेन्माषैर्वा सर्वत्रौषधयस्सुमनसो भूत्वाऽस्यां वीर्यं समाधत्तेयं कर्म करिष्यतीति ॥ २० ॥

अथेत्यानन्तर्यार्थेन प्रयोगैक्यमाह । अतो नान्तरा ब्राह्मणभोजनम् । अपरमिति कर्मान्तरत्वमाह । अतो वामदेव्यगानान्तं कृत्वा ब्रह्मणे दक्षिणां दत्वा वक्ष्यमाणकर्म कुर्यात् । कर्मद्वयात्मकमिदमेकं पुंसवनाख्यं कर्म । अस्रामां अशुष्काम् । न्यग्रोधाधिदेवताभ्यः परिक्रीणामीत्यनया बुद्ध्या सप्तभिर्यवैर्मूल्यतया सङ्कल्पितैश्शुङ्गां परितस्त्रिः प्रकीर्य शुङ्गामूर्ध्वाग्रां मन्त्रेण विकर्षेत् यथाच्छिद्यते । यवाभावे माषैः ॥ २० ॥

आहृत्य वैहायसीं कुर्यात् ॥ २१ ॥

गृहमाहृत्योपर्यनाच्छादिते देशे शुङ्गां निदध्यात् ॥ २१ ॥

भा०—इस नाभिमर्शन काम के पीछे पुंसवन संस्कार करने में एक काम और भी करना पड़ता है। यह पूर्वोक्त समय में होगा किन्तु जिस दिन नाभि मर्शन हो उसी दिन या उसके दूसरे तीसरे दिन करे इसका नियम नहीं। ईशान कोण में जो कोई बड़ का वृक्ष हो उस से शुङ्ग इस प्रकार लेवे कि उस वृक्ष के मालिक को २१ यव या २१ उड़द दाम देकर खरीद कर उसे तोड़े। इस शुङ्गा के दोनों बगल फल लगे होना चाहिये, सूखा न हो और उसमें कीड़े न लगे हों। 'इस शुङ्ग को मोल लेते समय आगे कहे जाने वाले सात मन्त्रों को पढ़कर तब खरीदे। मन्त्र—

हे शुङ्गे त्वं यदि सौमी असि तर्हि सोमाय राज्ञे त्वा परिक्रीणामि॥ १
त्वं यदि वारुणी असि तर्हि तस्मै वरुणाय राज्ञ एवत्वा परिक्रीणामि॥ २
त्वं यदि वसुभ्यः असि तर्हि वसुभ्य एव त्वा परिक्रीणामि॥ ३
त्वं यदि रुद्रेभ्यः असि तर्हि रुद्रेभ्यः एतत्त्वा परिक्रीणामि॥ ४
त्वं यदि आदित्येभ्यः असि तर्हि आदित्येभ्य एवत्वा परिक्रीणामि॥ ५
त्वं यदि मरुद्भ्यः असि तर्हि मरुद्भ्यः एव त्वा परिक्रीणामि॥ ६
त्वं यदि विश्वेभ्यो देवेभ्यः असि तर्हि विश्वेभ्यो देवेभ्य एव त्वा परिक्रीणामि॥ ७॥ अब उत्थापन मन्त्र कहते हैं—हे ओषधयः यूयं सुमनसः अस्यां वध्वां वीर्यं समाधत्त। इयं वधूः गर्भप्रसवनं करिष्यति॥ अर्थात्—उसके बाद इन मन्त्रों को पढ़कर उस शुङ्गे को वृक्षसे उखाड़ या तोड़ लेवे यह कह कर कि हे औषधि गण! तुम सब प्रसन्न होकर इस बहू में वीर्य साधन करो। जिससे यह वधू कष्टरहित हो गर्भ प्रसव करे। उस उखाड़े हुये शुङ्गे को तृण से ढाक कर अमर लत्ती या सूक्ष्म जटामांसी संग्रह कर इसकी रक्षा करे॥ २०॥ २१॥

कुमारी ब्रह्मचारी व्रतवती वा ब्राह्मणी पेषयेदप्रत्याहरन्ती॥२२॥

कुमारी च ब्राह्मणी। ब्रह्मचारी च ब्राह्मणः। वाग्यता ब्राह्मणी वा दृषत्पुत्रं प्रतीचीं दिशं प्रत्यप्रत्याकर्षन्ती पेषयेत्॥

भा०—इसके अनन्तर लोढ़ी शीलवट को अच्छी प्रकार धोकर कोई ब्रह्मचारी (गृहस्थ भी जो केवल ऋतुकाल में अपनी भार्या के

पास सम्भोग करता हो) या कोई पतिव्रता या ब्राह्मण वंश की कोई कुमारी उस शुङ्ग को शीलवट पर धर निरन्तर पीसे। अर्थात् पीसते ही समय ओषधी की सब गन्ध हवा द्वारा खिंच न जावे अतएव शीघ्र ही पीस लेवे ॥ २२ ॥

स्नातां संवेश्य दक्षिणे नासिकास्रोतस्यासिञ्चेत् पुमानग्निरिति ॥ २३ ॥

पुनस्स्नातामग्नेः पश्चात् प्राक्शिरसं दर्भेषु संवेश्य शाययित्वा तस्याः दक्षिणे नासिकारन्ध्रे शुङ्गारसमासिञ्चेत्। सा च तं रसमुदरस्थं कुर्यात्। अथ ब्राह्मणभोजनम् ॥ २३ ॥

भा०—और प्रातःकाल वहू उत्तराग्र कुशाओं पर बैठकर माथे तक जल में गोता लगाकर स्नान कर लेवे और अग्नि के पश्चिम भाग में उत्तराग्र डाले हुये कुशासन पर पूर्व की ओर शिर कर जागती हुई लेटी रहे। और पति उसके पीछे रहकर अनामिका और अँगूठे से पीसा हुआ शुङ्ग लेकर उसके दहिने नाक के छेद में उसका रस डाले या सुँघावे। सुंघाते समय "पुमानग्निः पुमानिन्द्रः" मन्त्र को पढ़ते हुये पति अपने इष्ट का स्मरण करे ॥ २३ ॥

अथास्याश्चतुर्थे मासि षष्ठे वा सीमन्तोन्नयनम् ॥ २४ ॥

अथेत्यकृतेऽपि तृतीये मासि पुंसवने अस्मिन् काले पुंसवनं कृत्वा सीमन्तकरणार्थम्। अस्या इति प्रथमगर्भनियमार्थम् ॥ २४ ॥

भा०—अब सीमन्तोन्नयन संस्कार को कहते हैं। यह संस्कार प्रथम ही गर्भ में किया जाता है। इसका समय गर्भधान से चौथे या छठे मास में होता है ॥ २४ ॥

स्नातामहतेनाच्छाद्य हुत्वा पतिः पृष्ठतस्तिष्ठन्ननुपूर्वया फलवृक्षशाखया सकृत्सीमन्तमुन्नयेत् त्रिश्श्वेतया च शलल्याऽयमूर्जावतो वृक्ष इति ॥ २५ ॥

अनुपूर्वयेति न्यग्रोधशुङ्गाधर्मयुक्तयेत्यर्थः। फलवृक्ष उदुम्बरः 'ऊर्ग्वा उदुम्बरः' इति श्रुतेः। 'अयमूर्जावतो वृक्षः' इति च मन्त्रवर्णात्।

तद्वदेव शाखामाहृत्य वैहायसीं कृत्वा पुंसवनवत् पृष्ठतः स्थानान्तं कृत्वा तया शाखया मूर्धिन गतान् वध्वाः केशान् प्रत्यञ्चमुन्नयेत्। 'कृणोमि' इति मन्त्रान्तः। ततस्त्रिषु देशेषु श्वेतया वराहसूच्या तद्वदेव 'राकामहम्' इत्युन्नयेत्। 'रराणा' इति मन्त्रान्तः ॥ २५ ॥

कृसरः स्थालीपाकः ॥२६॥

कृसरः तिलमिश्रः पाकधर्मयुक्तो भवेत् चौले 'वृथा पक्वः' इति विशेषणात्। निर्वापमन्त्रस्तु नास्ति देवताऽभावात् ॥ २६ ॥

उत्तरघृतमवेक्षन्तीं पृच्छेत् किं पश्यसीति ॥ २७ ॥

स्पष्टम्। उत्तरे घृते यथा छाया दृश्यते तथा घृतसेकः ॥ २७ ॥

प्रजामिति वाचयेत् ॥ २८ ॥

पतिः। अथोपरिष्टाद्धोमादि ब्राह्मणभोजनान्तम्। वधूः स्थालीपाकमश्नीयादिति गृह्यान्तरोक्तम् ॥ २८ ॥

भा०-प्रातःकाल उत्तराग्र बिछाये हुए कुश के आसन पर वहू को बैठाकर माथे तक उसे नह्वा कर अग्नि के पश्चिम में बिछाये हुए उत्तराग्र कुशासन पर पूर्व मुंह उसे बैठाये, पति भी उसके पीछे रहे। अनन्तर यज्ञगूलर का गुच्छा और एक शलाटु का, उस वहू के आंचल में या शरीर के जिस किसी बांधने योग्य अङ्ग में बांध देवे। दोनों गुच्छाओं को बांधते समय "अयमूर्जावतो वृक्षः" मन्त्र को पढ़े उसके अनन्तर सार गर्भ सूखा कुशा जो समूल हो उससे निर्मित पिञ्जुली से उस बधू का केश सम्हारे "भूः" मंत्र से पहिली वार "भुवः" मंत्र से दूसरी वार और "स्वः" मन्त्र से तीसरी वार सीमन्त के केश आदि को पिंजूली से बढ़ा देवे। "येनाहिते" मन्त्र को पढ़ता हुआ जिस 'शर' का बाण तय्यार होता हो उसी शर से सीमन्त को बीच में चीड़कर शोभायमान करे। 'राकामहम्' मन्त्र का पाठ करके जिससे ही के कांटे में तीन जगह श्वेत हो ऐसे कांटे से छोटे छोटे केशों को ऊपर को उठा देवे। उसके बाद घी का सँवरा देकर आग का पका तिल तण्डुल की बहू को दिखलावे और उसे पूछे कि तुम उसमें क्या देखती हो—वह कहे कि "प्रजा" देखती हूं, इसके पश्चात् उस दिन बहू उसी को भोजन करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

प्रतिष्ठिते वस्तौ सोष्यन्तीहोमः ॥ २९ ॥

वस्तौ गर्भे प्रतिष्ठिते स्वस्थानात् प्रच्युते, प्रोपसर्गस्तिष्ठतिर्गमनवाचकः। प्रतिगर्भमेतत् जायमानार्थत्वात्। प्रणीतेऽग्नावेतत्। नात्रान्वारम्भः अतत्संस्कारत्वात्। अकृते यदि जननं स्यात् न तत्र पुनः क्रिया 'जनिष्यते' इति मन्त्रलिङ्गात्। तत्राशौचात् ऊर्ध्वं प्रायश्चित्तेनैव संस्कारः ॥ २६ ॥

भा०—जब प्रसव होते समय योनि के अग्रभाग में गर्भ आ जावे उसी समय यह "शोष्यन्ती होम" संस्कार करे ॥ २६ ॥

या तिरश्चीति द्वाभ्याम् ॥ ३० ॥

प्रपदान्तं कृत्वा व्याहृतिभिस्तिसृभिः हुत्वा 'या तिरश्ची' इति हुत्वा 'विपश्चित्पुच्छम्' इति जुहुयात् ॥ ३० ॥

असाविति नाम दध्यात् ॥ ३१ ॥

यदि पुन्नामाभिलषितं 'विष्णुशर्मानाम' इतिवत् मन्त्रस्थेऽसौशब्दे नाम निदध्यात्। युग्माक्षरं ब्राह्मणस्य माङ्गल्यं शर्मवत्स्यात्। बलरक्षान्वितं क्षत्रियस्य। धनपुष्टिसंयुतं वैश्यस्य। जुगुप्साप्रेष्यसंयुतं शूद्रस्य ॥ ३१ ॥

युग्माक्षरं ब्राह्मणस्य द्व्यक्षरं चतुरक्षरम्।
माङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम्।
शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्यात् राज्ञो रक्षासमन्वितम् ॥
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥

इति मनुवचनाच्च ॥

भा०—पूर्व उपदेशानुसार अग्नि स्थापनादि परिस्तरण कार्य के पीछे "या तिरश्ची०" मन्त्र से और और "विपश्चित् पुच्छमभरत्" मन्त्र से आज्य तन्त्र द्वारा दो आहुति देवे। उस समय "यदि पुत्र जन्म लेवे, तो यही नाम रक्खूंगा" इस प्रकार मन ही मन एक नाम स्थिर कर रक्खे। अर्थात् पुत्र की आशा करे ॥ ३० । ३१ ॥

तद्गुह्यम् ॥ ३२ ॥

वैदिककर्मार्थमेतत्। व्यावहारिकं त्वन्यदेव गुह्यत्वोक्तेः। नामापरिज्ञाने आभिचाराद्यसिद्धिः फलम् ॥ ३२ ॥

भा०—परंतु वह नाम गुप्त रक्खे किसी से प्रकट न करे ॥३२॥

प्राङ् नाभिकृन्तनात् स्तनदानाच्च व्रीहियवौ पेषयेच्छुङ्गावृता ॥ ३३ ॥

प्रागिति विसमासः प्राङ्नाभिकृन्तनादसम्भवे स्तनदानात्प्राक् कर्तुम्। द्विवचनाद्व्यक्तिद्वयम्। जात्यभिप्रायेणेति केचित्। शुङ्गावृता शुङ्गाप्रकारेण 'कुमारी ब्रह्मचारी व्रतवती वा ब्राह्मणी पेषयेदप्रत्याहरन्ती' ॥ ३३ ॥

अङ्गुष्ठेनानामिकया चादाय कुमारं प्राशयेदियमाज्ञेति ॥ ३४ ॥

अंगुष्ठानामिकाभ्यामिति सिद्धे पृथग्ग्रहणं विषयद्वयसूचनार्थम्। अन्नप्राशनमप्याभ्यामेवेति। चशब्दोऽन्नप्राशनेऽप्येतन्मन्त्रप्रापणार्थः ॥ ३४ ॥

सर्पिश्च मेधां त इति ॥ ३५ ॥

चशब्दः पूर्ववत् मेधां ते मित्रावरुणामिति मन्त्रनियमार्थः, अन्नप्राशने आभ्यां मन्त्राभ्यां अन्नमेव प्राशयेत्। कालस्तु 'षष्ठेऽन्नप्राशनं मासे' इति स्मृत्यन्तरात् गम्यते। केचित्—चशब्दो हिरण्यमधुसमुच्चयार्थ इत्याहुः। तथाच मनुः—'हिरण्यमधुसर्पिर्भ्याम्' इति ॥ ३५ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ द्वितीयस्य पटलस्य
द्वितीयः खण्डः ॥ २। २ ॥

भा०—पूर्व में शुङ्ग पीसने का जो नियम कहा गया है उसी प्रकार धान्यतण्डुल और यवतण्डुल को पीसकर नाभि छेदन के पहिले दहिने हाथ से अनामिका और अंगूठे से ग्रहण करके 'यही ईश्वर की आज्ञा है'—मन्त्र पढ़कर उस नव बालक के जीभ में चटा देवे और

बुद्धि बढ़ने की इच्छा से "मेधान्ते मित्रावरुणौ०" मंत्र और "सदस-स्पतिमद्भुतम्०" मन्त्र को पढ़कर दो वार उसी प्रकार अंगूठा अनामिका अंगुली से घी भी चटावे । या सोने की शलाका के अग्रभाग से कुमार के मुंह में देवे और तब नाल काट कर स्तन पिलावे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के दूसरे पटल के दूसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ २ ॥ २ ॥

जननाज्ज्योत्स्ने तृतीये तृतीयायां प्रातः स्नाप्य कुमारम-स्तमिते शान्तासु दिक्षु पिता चन्द्रमसमुपतिष्ठेत् प्राञ्जलिः ॥ १ ॥

मातुः पितुर्वा रुच्या यदा कदाचित् शिशोर्निष्क्रमणे प्राप्ते तदुपक्रमनियमोऽयम् । दैवान्मानुषाद्वा हेतोः निष्क्रमणे कृतेऽपि संस्कारार्थमस्मिन् काले कुर्यादेव । एवमुत्तरत्रापि । कालात्यये तूक्त एव न्यायः सर्वेषु संस्कारेषु । ज्योत्स्ना चन्द्रप्रभा तद्योगात् पूर्वपक्षो ज्योत्स्नः । जननादूर्ध्वं ये ज्योत्स्नाः तेषां तृतीये तृतीयायां तिथावित्यर्थः । यदि पूर्वपक्षे जननं स्यात् नासौ गणयितव्यः । कृत्स्नस्य जननादूर्ध्वत्वाभावात् । तथा च मनुः—'चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्' इति । उपस्थानकाले तृतीयानियमः । शान्तासु उपरतादित्यरश्मिषु दिक्षूपतिष्ठेदिति दर्भेषु तिष्ठेत् चन्द्राभिमुखो वक्ष्यमाणप्रकारेण कुमारमादाय मन्त्रैश्चन्द्रमसमभिदध्यादित्यर्थः ॥ १ ॥

भा०—अब निष्क्रमण संस्कार को कहते हैं। जन्म से तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि में प्रातःकाल ही नव कुमार को मस्तक तक धोकर स्नान करावे । इसके पीछे सूर्यास्त के बाद अर्थात् ऐसे समय में जब कि सूर्य मण्डल की लालिमा तक न दीख पड़े कुमार का पिता पुत्र को लेने के लिये दोनों अञ्जलि पसार कर खड़ा रहे ॥ १ ॥

शुचिनाऽऽच्छाद्य माता प्रयच्छेदुदक्छिरसम् ॥ २ ॥

वस्त्रेणाच्छाद्य दक्षिणतः स्थित्वा कुमारं पित्रे प्रयच्छेत् माता ॥ २ ॥

भा०-और उसकी माता कुमार को साफ वस्त्रसे ढाप कर अपने स्वामी के दक्षिण ओर आकर बालक को उत्तर शिरा और उत्तानभाव से उसकी अञ्जलि में देवे ॥ २॥

अनुपूर्वं गत्वोत्तरतस्तिष्ठेत् ॥ ३ ॥

पूर्वशब्दो दिग्वाची। अनु पृष्ठं गत्वा पितुरुत्तरतः प्रत्यङ्मुखी दर्भेषु तिष्ठेन्माता ॥ ३ ॥

भा०-और स्वयं अपने पीठ पर होकर वाम दिशा में आकर पिता के उत्तर भाग में पश्चिम मुंह हो कुशों पर खड़ी रहे ॥ ३ ॥

यत्ते सुसीम इति तिसृभिरुपस्थायोदञ्चं मात्रे प्रदाय यदद इत्यपामञ्जलिमवसिञ्चेत् ॥ ४ ॥

उदञ्चं उदक्छिरसम्। प्रातःकाले पात्रेण पूर्णं गृहीता आपः स्युस्ताभिर्दर्भेषु दक्षिणतस्तिष्ठन् ब्राह्मणोऽञ्जलिं पूरयेत्, तं भूमाववसिञ्चेत् ॥ ४ ॥

भा०—इसके अनन्तर कुमार के साथ पिता "यत्ते सुसीमे' और "यथा अयं न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि' तक तीन मन्त्रों का जप करके प्रात:काल में पात्र में पूरा जल लेकर कुशासन पर खड़ा हुआ ब्राह्मण अञ्जलि को भर देवे और उसको ज़मीन में सीचे ॥ ४ ॥

द्विस्तूष्णीम् ॥ ५ ॥

अमन्त्रकं द्विरवसिञ्चेत् ॥ ५ ॥

भा०—और दो वार विना मंत्र पढ़े जल सीचे ॥ ५ ॥

जननादूर्ध्वं दशरात्राच्छतरात्रात्संवत्सराद्वा नाम कुर्यात् ॥ ६ ॥

जननदिवसादूर्ध्वं यो दशरात्रः तस्मादूर्ध्वं यदहस्तस्मिन्नित्यर्थः। द्वादशेऽहनीति यावत्। एवमुत्तरयोः पक्षयोः। नात्रोदगयनपूर्वपक्षादरः, क्वचित्सम्भवस्य नियतत्वात्। असम्भवेऽपि न तद्वशेन कालविनिवेशः, वैरूप्यप्रसङ्गात् ॥ ६ ॥

अब नाम करण संस्कार को कहते हैं। जन्म दिन से दश दिन या १०० दिन या संवत्सर बीतने पर ग्यारहवें दिन में नव कुमार का नाम करण करे॥ ६॥

स्नाप्य कुमारं करिष्यत उपविष्टस्य शुचिनाऽऽच्छाद्य माता प्रयच्छेदुदक्छिरसम्॥ ७॥

होमारम्भात्पूर्वं दर्भेपूपविष्टस्य शुचिना वस्त्रेणाच्छाद्य दक्षिणत उपवि य प्रयच्छेत्तत्॥ ७॥

अनुपृष्ठं गत्वोत्तरत उपविशेत्॥ ८॥

दर्भेषु माता॥ ८॥

भा०—होम कार्य के आरम्भ करने के पहिले कुशासन पर पूर्व मुँह बैठे कुमार की प्रसूति साफ वस्त्र में शिशु को ढांक कर ले आवे और नाम करण संस्कार करने के लिये प्रवृत्त कुमार के पिता या दूसरे ब्राह्मण के दहिने ओर आकर उत्तर शिरा और उत्तान भाव से उसे देकर नाम करण करने में प्रवृत्त पिता या ब्राह्मण के पीठ के रास्ते आ कर कुश पुञ्ज पर माता बैठे॥ ७॥ ८॥

हुत्वा कोसीति तस्य मुख्यान् प्राणानभिमृशेत्॥ ९॥

उदक्छिरसं कुमारं स्वाङ्के धारयन् प्रपदान्तं कृत्वा द्विस्तिसृभिर्व्याहृतिभिर्हुत्वा कुमारस्य चक्षुषी श्रोत्रे नासिके चाभिमृशेत्॥ ९॥

असाविति नाम कुर्यात्तदेव मन्त्रान्ते॥ १०॥

यत्सोष्यन्तीहोमे तदेव। परिददातु विष्णुशर्मन्निति वत् कुर्यात्। मन्त्रान्तेऽसौशब्दे न मध्ये॥ १०॥

मात्रे॥ ११॥

प्रयच्छेदुदक्छिरसमिति शेषः॥ ११॥

प्रथममाख्याय॥ १२॥

मात्र इत्यनुवर्तते। प्रथमशब्दस्य द्वितीयापेक्षत्वात् प्रथमं गुह्यं नाम मातुरुक्त्वा द्वितीयमपि व्यावहारिकं नामेदानीं ब्रूयादित्यर्थः। ततो ब्राह्मणभोजनम्॥ १२॥

भा०--इसके पश्चात् नामकरण संस्कार होने वाले कुमार को गोद में लेकर पहिले प्रजापति देवता की तुष्टिके लिये होम करें। पीछे जिस तिथिमें कुमारका जन्म हुआ है,उस तिथि का नाम लेकर दूसरी आहुति देवे। उसके पश्चात् जिस नक्षत्र में कुमार का जन्म हुआ है, उसका नाम कहकर तीसरी आहुति देवे। फिर उस बालक के मुख में हाथ देकर उसके दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों (नासिका के) छिद्रों का अभिमर्शन करे और "कोऽसि कतमोऽसि" मंत्र को पढ़े और मंत्र पढ़ते समय दो स्थानों में स्थित "असौ" यह के बदले नया नाम रक्ख के व्यवहार करे। इस नाम के आदि अक्षर घोष वर्ण मध्य में अन्तस्थ वर्ण और अन्तिम वर्ण दीर्घ या विसर्ग होगा। विशेषतः इस नाम में तद्धित न रहे। कन्या सन्तान का नाम जोड़े अक्षर अन्त में और दकारान्त न हो यही देखना चाहिये। इस प्रकार नाम युक्त मंत्र के दोनों स्थानों में "असौ" पद की जगह मिलाकर पाठ समाप्त होने पर सबसे पहिले उसकी माता को। गुप्त और व्यावहारिक दोनों नाम बतलावे ॥ ९। १०। ११। १२॥

विप्रोष्यङ्गादंगादिति पुत्रस्य मूर्धानं परिगृह्णीयात् ॥ १३॥

ग्रामान्तरे त्रिरात्रमुषित्वा यदाऽऽगच्छति तदा पत्नितः उभाभ्यां हस्ताभ्यां गृह्णीयात्। विप्रोष्याङ्गादिति प्राप्ते बहुलवचनाद्धस्वत्व मस्य बहुविषयत्वं द्योतयितुम्। अतः प्रतिपुत्रमेतद्विप्रोष्य कर्त्तव्यम्॥१३॥

पशूनां त्वेत्यभिजिघ्रेत् ॥ १४॥

मूर्धन्यभिजिघ्रेत्। असौशब्दे विष्णुशर्मन्निति वत् ब्रूयात्॥

भा०—अपने ग्राम से बाहर जाकर दूसरे ग्राम में तीन रात्रि रहकर जब अपने गांव में पिता वापिस तब अपने पुत्र को दोनों हाथों से "अङ्गादङ्गात् सम्भवसि" इन तीन मन्त्रों को पढ़कर दोनों हाथों से पुत्र का मस्तक पकड़ कर "पशूनां त्वा०" मंत्र पढ़कर सूंघे ॥ १३। १४॥

तूष्णीं स्त्रियाः ॥ १५ ॥

जातकर्मादि चौलान्तं मन्त्रवर्ज स्त्रियाः कुर्यात् । साङ्गस्तु होमो निवर्तते मन्त्रादिलोपे देवतोद्देशस्यापि लोपात् ।

मानवेऽप्युक्तम्—

असन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।

संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥ इति ॥

उपनयनं तु नास्ति तत्स्थानापन्नतया विवाहस्य स्मरणात् । अतो विवाहात्प्रागनुपनीततुल्यमाचरेत् । ऊर्ध्वं तु भर्तृतुल्यं 'सहधर्मश्चर्यताम्' इति वचनात् । उपनयनाभावान्नाध्ययनम् । तदभावात्तदर्था नियमा जपाश्च न सन्ति । आहृत्य विहितास्तु वचनबलाद्भवन्त्येवेति ॥ १५ ॥

भा०—कन्या का यह संस्कार बिना मन्त्र पढ़े होगा ॥ १५ ॥

तृतीये वर्षे चौलम् ॥ १६ ॥

अत्र जननादिमासगणनया द्वादशमासास्संवत्सरः, न चैत्रादिः ॥ १६ ॥

भा०—अब चूड़ाकरण संस्कार को कहते हैं। यह संस्कार बालक या बालिका के जन्म से तीसरे वर्ष में करे ॥ १६ ॥

तत्र नापित उष्णोदकमादर्शः क्षुरो वौदुम्बरः पिञ्जूल्य इति दक्षिणतः ॥ १७ ॥

नापितो वपनकर्ता आयसक्षुरपाणिः 'आयसेन प्रच्छिद्य' इति वचनात । उष्णोदकं कंसपात्रपूर्णं, आदर्शः, क्षुरः औदुम्बरो वा विकल्प्यते, दर्भपिञ्जूल्य एकविंशतिः एतान्यग्नेर्दक्षिणतः स्युः ॥ १७ ॥

भा०—नापित अग्नि के दक्षिण भाग में गर्म जल, कटोरा जल भरा, दर्पण, क्षुरा, गूलर का काष्ठ का क्षुरा, कुश की पिञ्जुली २१ रक्खे ॥ १७ ॥

आनडुहो गोमयः कृसरस्स्थालीपाको वृथापक्व इत्युच्चरतः ॥ १८ ॥

पुंगवशकृत्, पाकधर्मरहितोऽग्न्यन्तरशृतस्तिलमिश्रः स्थालीपाकश्चाग्नेरुत्तरतः स्याताम् ॥ १८ ॥

भा०—और अग्नि के उत्तर भाग में बैल का गोबर अमन्त्र पक्क कृसर रक्खे ॥ १८ ॥

माता च कुमारमादाय ॥ १९ ॥

पृथङ्निर्देशः कर्तुरुत्तरतः उपवेशनार्थः । मातुर्न दर्भासनम् । चकारः उत्तरत इत्यस्यानुकर्षणार्थः । एतन्नापितादिस्थापनं ब्रह्मोपवेशनादूर्ध्वं स्यात् । एतान्यहोमार्थानि । अतः क्रिया अपि स्युः । अन्वावृत्तिरव्यवायश्च तेतां नावश्यं स्याताम् । तथा परिषेचनेऽपि नाभिपरिहरणम् ॥ १६ ॥

भा०—इसके पश्चात् बालक की माता बालक को साफ वस्त्रों में लपेट कर अग्नि के पीछे उत्तराग्र रक्खे हुये कुशासन पर पूर्व मुंह हो वैठे ॥ १६ ॥

हुत्वाऽयमागादिति नापितं प्रेक्षेत्सवितारं ध्यायन् ॥ २० ॥

प्रपदान्तं कृत्वा मातृप्रयुक्ते कुमारेऽन्वारब्धे व्याहृतिभिस्तिसृभिर्हुत्वा पुनस्समन्तान्ताभिश्चतसृभिर्हुत्वा 'अयमागात्' इति नापितं प्रेक्षेत् सवितारं ध्यायन् ॥ २० ॥

भा०—प्रपदान्त तक सारी क्रिया को करके माता से कुमार के अन्वारब्ध तीनों व्याहृतियों द्वारा तीन आहुति और सारी व्याहृति से चौथी आहुति देकर "यह आया" कह कर सूर्य्य भगवान् का ध्यान करता हुआ नापित को देखे ॥ २० ॥

उष्णेनेत्युष्णोदकं प्रेक्षेद्वायुं ध्यायन् ॥ २१ ॥

वायुं मनसा ध्यायन् ॥ २१ ॥

भा०—और मन से वायु देवता का ध्यान करता हुआ कांसे के पात्र में 'उष्णेन' मन्त्र से गर्म जल को देखे ॥ २१ ॥

आप इत्युन्देत् ॥ २२ ॥

दक्षिणतः केशान् उष्णोदकेन क्लेदयेत ॥ २२ ॥

भा०—दहिने हाथ से कपुष्णिका पकड़ कर "आप उन्दन्तु" मन्त्र पढ़के उसे गर्म जल से गीला करे ॥ २२ ॥

विष्णोरित्यादर्शं प्रेक्षेदौदुम्बरं वा ॥ २३ ॥

स्पष्टम् ॥ २३ ॥

भा०—"विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि" मन्त्र पढ़ता हुआ उसमें गर्म जल सींचे और गूलर का छुरा या दर्पण देखे ॥ २३ ॥

ओषधय इति दर्भपिञ्जूलीस्सप्तोर्ध्वाग्रा अभिनिधाय ॥ २४ ॥

केशैस्संहत्य ॥ २४ ॥

भा०—"ओषधे त्रायस्वैनं०" मन्त्र को पढ़कर सात कुश की पिञ्जुली नीचे को जड़ और ऊपर को फुनगी इस प्रकार कपुष्णिका में धारण कराये ॥ २४ ॥

स्वधित इत्यादर्शेन क्षुरेणौदुम्बरेण वा ॥ २५ ॥

दर्भाग्रयुक्तान् केशानन्यतरेण संयोजयेदित्यर्थः ॥ २५ ॥

भा०—पीछे उसी दर्भ पिंजुली के साथ दहिने कपुष्णिका आदि बायें हाथ में रक्खकर "स्वधिते मैनं हिंसी०" मन्त्र पढ़कर दाहिने हाथ में उस गूलर के काठ का छुरा या दर्पण लेकर उसी कपुष्णिका में अच्छे प्रकार धारण करावे ॥ २५ ॥

येन पूषेति दक्षिणतस्त्रिः प्राञ्चं प्रोहेत् ॥ २६ ॥

आदर्शेन क्षुरेणौदुम्बरेण वा केशान् दर्भाग्रसंयुक्तांस्त्रिरसंमृज्यादित्यर्थः। मन्त्रस्यापि त्रिरावृत्तिः ॥ २६ ॥

भा०—और उसको पूर्व मुंह कर तीन वार चलाकर केश कटेंगे इसको भली भांति तर्क कर विचारे। उस तीन वार के चलाने में एक वार "येन पूषा०" और अन्य दो वार में मंत्र न पढ़े ॥ २६ ॥

सकृदायसेन प्रच्छिद्यानडुहे गोमये केशान् कुर्यात् ॥ २७ ॥

अमन्त्रकमेतत् ॥ २७ ॥

भा०—और लोहे के छुरे से उस दर्भपिञ्जुली के साथ दक्षिण कपुष्णिका को एक ही वार में काटकर गोवर पर रक्खे ॥ २७ ॥

उन्दनप्रभृत्येवं पश्चादुत्तरतश्च ॥ २८ ॥

स्पष्टम् ॥ २८ ॥

भा०—उत्तर कपुष्णिका के काटने में भी पूर्ववत् ही नियम रहेगा ॥ २८ ॥

त्र्यायुषमिति पुत्रस्य मूर्धानं परिगृह्य जपेत् ॥ २९ ॥

उभाभ्यां हस्ताभ्यां परितो गृहीत्वा ॥ २६ ॥

भा०—इसी प्रकार दोनों कपुष्णिका और कपुच्छल काटने पर दोनों हाथों से कुमार के माथे को पकड़ कर "त्र्यायुषं जमदग्नेः०" मन्त्र को पढ़े ॥ २६ ॥

उदङ् ङुत्सृप्य कुशली कारयेद्यथागोत्रकुलकल्पम् ॥३०॥

वपनं कारयेन्नापितेन। गोत्रादिवशेन शिखाव्यवस्था स्मर्यते, तदनुसारेण नापितं संप्रेष्य होमं समापयेत् ॥ ३० ॥

भा०—इस प्रकार दोनों कपुष्णिका काटे जाने पर बालक वहां से हटकर अग्नि के उत्तर भाग में बैठे और आत्मीय लोग नापित से गोत्र और कुल की रीति अनुसार पाँच या तीन शिखा रखके या शिखा सहित मुण्डन करावें ॥ ३० ॥

अरण्ये केशान्निखनेयुः ॥ ३१ ॥

सर्वान् केशान् गोमयेन प्रच्छाद्य कर्मकरा निखनेयुः ॥ ३१ ॥

भा०—मुण्डन के पीछे केशों को गोवर लपेट कर नौकर इसको लेकर वन में जाकर जमीन में गाड़ देवे ॥ ३१ ॥

स्तम्बे निदधत्येके ॥ ३२ ॥

दर्भस्तम्बे ॥ ३२ ॥

भा०—किन्हीं आचार्यों की राय है कि कुशों के गुच्छे पर केशों को रक्खे ॥ ३२ ॥

गौर्दक्षिणा ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणे देया। अत्रेदं चिन्त्यते—एते गर्भाधानादयस्संस्काराश्शरीरं संस्कुर्वन्तस्सर्वेष्वदृष्टार्थेषु कर्मसु योग्यतातिशयं कुर्वन्ति। फलातिशयो योग्यतातिशये च। न पुनरयोग्यस्यैव योग्यतां कुर्वन्ति संस्कारवन्त मभिनिर्दिश्य पुरुषमात्रस्यैव कर्मणां विधानात् स्वत एव विद्यमानत्वा-द्योग्यतायाः। नाप्यकिञ्चित्कराः, आनर्थक्यप्रसंगात्। नापि स्वत एव पुरुषार्थाः संस्कारश्रुतिविरोधात्। योग्यतातिशयस्तु संभवति यथा पानीयस्य गन्धादि क्षुरादेश्च तैक्ष्ण्यादि। चौलपर्यन्तास्सर्वे संस्कारा अतिक्रान्तस्वकाला उपनयात् प्रागेव कालातिपत्तिप्रायश्चित्तं कृत्वा कर्तव्यः। ऊर्ध्वं त्वकृतानां लोप एव 'तद्द्वितीयं जन्म' इति जन्मान्तर-व्यपदेशात् संस्कारेषु द्विप्रकारं शास्त्रमस्ति एक पितुरुपदेशकं पुत्रमुत्पा-दयेत् संस्कुर्याच्चेति। अपरं पुत्रस्यैते संस्कारा आत्मार्थतया कर्तव्या इति। नन्वस्वव्यापारे कथं प्रामाण्यम्। सत्यं, यदि व्यापारकर्तृता बोध्या स्यात्, कर्मजन्यस्य हि पुरुषार्थस्य पुरुषशेषतया जन्यताशब्देन बोध्यते। सा च कदाचित् स्वव्यापारात् स्यात् कदाचित्परव्यापारात् स्यात्। इयान्विशेषः स्वव्यापारे तत्सिद्धये स्वयमेव प्रवर्तते। परव्यापारे तु यदि स्वाधिकारादेव प्रवर्तमानमन्यं लभते तदोदास्ते प्रसङ्गात् कार्य-सिद्धेः। अलाभे तु स्वयमेव प्रयोजयति केनाप्युपायेन। ननु असौ शिशुत्वात्प्रतिपत्तुं न शक्नोति गर्भाधानाद्यवस्थायां तु सुतरां प्रतिपत्त्य-संभवः। सत्यं, यदि यस्यैव फलं तस्यैव प्रतिपत्त्युत्पादकत्वेन शब्दस्य प्रामाण्यं स्यात्। 'स्वर्गकामो यजेत' इति स्वर्गकामिन इदं कर्तव्यमिति तस्यान्यस्य चाविशेषेण प्रमितिं जनयत्येव शास्त्रमुभयोरपि प्रमाणमेव। इयान्विशेषः—स्वर्गकामश्चेत् ममेदं कर्तव्यमिति प्रतिपद्यते। अन्यश्चेत् स्वर्गकामिन इदमिति प्रतिपद्यते न ममेदमिति कामसदसत्त्वोपाधिनि-मित्तोऽसौ भेदो न शब्दस्य तत्र व्यापारः। अतः पिता तस्य कर्तव्यं शास्त्रेण निश्चित्यात्मनश्चावश्यं कर्तव्यतां प्रतिपद्य तत्करोति, पितुरभावे यः तद्रक्षणेऽधिकृतः। तदभावे यः परोपकारं कर्तुं प्रवृत्तः, यो वा तं प्रत्यात्मनो गुरुत्वमिच्छति, हितैषी वा कश्चित् कुर्यात् कारयेद्वा। स्वा-

धिकारप्रवृत्तश्चेदात्मीयमेव द्रव्यं ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात्। तत्कार्यप्रवृत्तश्चेत्कुमारस्य यत्स्वं तदेव ॥ ३३ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ द्वितीय पटलस्य
तृतीयः खण्डः ॥ २ ॥ ३ ॥

भा०—इस चूड़ाकरण की दक्षिणा ब्राह्मण को एक गौ देवे ॥३३॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के दूसरे पटल के तीसरे खण्ड का
भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ २ ॥ ३ ॥

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥ १ ॥

अत्र गर्भाधानादि वर्षगणनं 'गर्भादिस्संख्या वर्षाणाम्' इति स्मृतेः। एवमुत्तरत्रापि। 'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत, ग्रीष्मे राजन्यम्' इति शास्त्रान्तरे दर्शनात् ताभ्यामविरोधादुदगयनस्य समुच्चयः। केचित्त्वाहुः—'शरदि वैश्यम्' इत्यनेन विरोधात्तेन च तुल्यश्रुतित्वाद्वसन्तादेर्विकल्प एवेति ॥ १ ॥

अब उपनयन संस्कार को कहते हैं। जिस मास में गर्भ हुआ हो उस मास से गिनने पर जो वर्ष अष्टम हो उस वर्ष के जिस किसी शुभ तिथि में ब्राह्मण कुमार को संस्कारपूर्वक वेद पढ़ने के लिये उपयुक्त गुरु के पास लावे ॥ १ ॥

तस्या षोडशादनतीतः कालः ॥ २ ॥

आङभिविधौ। आपत्कालोऽयं, अत ऊर्ध्वं व्रात्या भवन्ति। एवमुत्तरत्रापि ॥ २ ॥

भा०—यदि कारणवश ८ वें वर्ष में उपनयन न हो सके तो सोलह वर्ष की उमर तक जिस किसी समय जिस किसी उपयुक्त तिथि में उपनयन कर सकता है ॥ २ ॥

एकादशे क्षत्रियम् ॥ ३ ॥

उपनयेदिति वर्तते ॥ ३ ॥

भा०—क्षत्रिय कुमार को उसी प्रकार गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में वेदाचार्य के पास लावे अर्थात् उपनयन करे ॥ ३ ॥

तस्या द्वाविंशात् ॥ ४ ॥

अनतीतः काल इत्यनुवर्तते ॥ ४ ॥

भा०—और यदि आपत्काल में ग्यारहवें वर्ष उपनयन न कर सके तो २२ वर्ष की उमर तक उपनयन कर सकता है ॥ ४ ॥

द्वादशे वैश्यम् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् ॥ ५ ॥

भा०—वैश्य कुमार का बारहवें वर्ष में उपनयन करे ॥ ५ ॥

तस्या चतुर्विंशात् ॥ ६ ॥

स्पष्टम् ॥ ६ ॥

भा०—इसको यदि आपत्कालवशात् १२ वें वर्ष में उपनयन न कर सके तो इसके २४ की उमर तक उपनयन कर सकता है ॥ ६ ॥

कुशलीकृतमलंकृतमहतेनाच्छाद्य हुत्वाऽग्ने व्रतपत इति॥७॥

कुशलीकृतं रूपम्। अलंकृतं चाङ्गम्। वपनालङ्कारौ। अतस्तौ चावश्यमुपनयनमुहूर्ते कर्तव्यौ। एष क्रमः—वपनं कृत्वा अलंकृत्य नान्दीमुखं कृत्वा कौतुकबन्धनं कृत्वा पुण्याहं वाचयित्वा कुमारं भोजयित्वोपलेपनाद्यभ्युक्षणान्तं कृत्वा तत्रैकदेशं प्रणीय प्रज्वाल्य 'इमं स्तोमम्' इत्यादि ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा नवेनाधरवाससाऽऽच्छाद्य यज्ञोपवीतमजिनं चामन्त्रकं प्रतिमुच्याचमयित्वाऽऽत्मनो दक्षिणत उदगग्रेषु दर्भेषूपवेश्य परिस्तरणादि प्रपदान्तं कृत्वाऽन्वारब्धे माणवके व्याहृतिभिस्तिसृभिर्हुत्वा पुनश्च समस्ताभिश्च चतसृभिर्हुत्वा 'अग्ने व्रतपते' इत्यादिभिः पञ्चभिर्माणवकं हावयेत् मन्त्रलिङ्गात्। मन्त्रलिङ्गनिरीक्षणार्थमेव हि पञ्चभिरिति नोक्तम् ॥ ७ ॥

भा०—[उक्त तीनों वर्णों के कुमार क्रम से १७ वें २३ वें और २५ वें वर्ष में उपनयन न होने के कारण पतित सावित्रिका हो जाते हैं अर्थात् इनको गायत्री मन्त्र का उपदेश नहीं हो सकता है] इसके अनन्तर कुमार को यथागोत्र कुल शिखा रखते हुए मुण्डन करा कर

आभूषणों को पहना, नान्दीमुख श्राद्ध कर हाथ में कौतुक बांध कर ब्राह्मणों से पुण्याह वचवा कर, कुमार को प्रातःकालिक भोजन करवा कर लीपने से अभ्युक्षण तक भूसंस्कार कर एकदेश में यज्ञ वेदी बनवा कर उस पर अग्नि जला कर 'इमं स्तोमम्' इत्यादि ब्रह्मोपवेशन तक करके कुमारको नया वस्त्र पहना कर या ढाक कर यज्ञोपवीत, मृगछाला को बिना मन्त्र के त्याग कर, आचमन कर अपने से दक्षिण भाग में उत्तराग्र कुशासन पर बैठाकर, परिस्तरण से लेकर प्रपद तक की क्रियाओं को करके कुमार द्वारा अन्वारब्ध अलग २ तीन व्याहृतियों से तीन आहुति और सारी व्याहृति से चौथी आहुति देकर "अग्ने व्रतपते०" इत्यादि पांच मन्त्रों से कुमार से हवन करावे ॥ ७ ॥

उत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखमवस्थाप्याञ्जलिं कारयेत् ॥८॥

अग्न्यात्मनोरन्तरेण माणवकं गमयित्वा प्रदक्षिणमावृतं दर्भेषु प्रत्यङ्मुखमवस्थाप्याकोशाञ्जलिं कारयेत् माणवकमाचार्यः ॥ ८ ॥

भा०— अग्नि और आचार्य के बीच में डाले हुये उत्तराग्र कुशाओं पर आचार्य के सम्मुख और कृताञ्जलि हो लड़का बैठे ॥ ८ ॥

स्वयं चोपरि कुर्यात् ॥ ९ ॥

प्राङ्मुखो दर्भेषु स्थितः ॥ ९ ॥

दक्षिणतस्तिष्ठन्मन्त्रवान् ब्राह्मण आचार्यायोदकाञ्जलिं पूरयेत् ॥ १० ॥

आचार्यस्य दक्षिणत उदगग्रेषु दर्भेषूदङ्मुखस्तिष्ठन् ब्राह्मणः 'ब्रह्मचर्यमागामुप मानयस्व' इत्येतन्मन्त्रवित् । ऋत्विक्त्वात्सिद्धे ब्राह्मण इत्यन्यत्राप्यञ्जलिपूरणे ब्राह्मणनियमार्थं, यथा चन्द्रोपस्थाने ॥ १० ॥

भा०—उस कुमार की दक्षिण में रहकर कोई वेद पाठी ब्राह्मण उसकी अञ्जलि जल से भर देवे उसके पश्चात् आचार्य की अञ्जलि भी जल से भरे ॥ ९ ॥ १० ॥

आगन्त्रेति जपेत् प्रेक्षमाणे ॥ ११ ॥

अञ्जलिस्थमुदकं प्रेक्षमाणे माणवके जपेदाचार्यः। ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व' इति ब्राह्मणो ब्रह्मचारिणं वाचयेत् मन्त्रलिङ्गात् ॥११॥

को नामासीत्युक्तो देवताश्रयं नक्षत्राश्रयं वाऽभिवादनीयं नाम ब्रूयादसावस्मीति ॥ १२ ॥

आचार्येणोक्तस्सन् देवताश्रयं स्वजन्मनक्षत्रं यद्देवत्यं तद्देवताश्रयं आग्नेय इतिवत्, नक्षत्राश्रयं स्वजन्मनक्षत्राश्रयं अश्वयुग्विष्णुशर्मानामास्मीतिवत् प्रतिब्रूयात् माणवकः। अभिवादनीयं गुह्यम्। अश्वयुक् अपभरणीः कृत्तिकाः रोहिणी मृगशीर्षं आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यः आश्लेषा मघाः फल्गुनी उत्तरफल्गुनी हस्तः चित्रा स्वाती विशाखे अनुराधाः ज्येष्ठा मूलं अषाढाः उत्तराषाढाः श्रवणं श्रविष्ठा शतभिषक् प्रोष्ठपदा उतरप्रोष्ठपदा रेवती एतानि नक्षत्राणि। अश्विनौ यमः अग्निः प्रजापतिः सोमः रुद्रः अदितिः बृहस्पतिः सर्पाः पितरः अर्यमा भगः सविता इन्द्रः वायुः इन्द्राग्नी मित्रः इन्द्रः प्रजापतिः पितरो वा आपः विश्वेदेवाः विष्णुः वसवः इन्द्रः अजएकपात् अहिर्बुध्न्यः पूषा एतानि दैवतानि। आश्वयुजः आपभरणः कार्तिकेयः रौहिणेयः मार्गशीर्षः आर्द्रकः पौनर्वसुः पौषः आश्रेषः माघः फाल्गुनः औत्तरफाल्गुनः हस्तः चैत्रः स्वातिः वैशाखः अनूराधः ज्यैष्ठः मौलः आषाढः औत्तराषाढः श्रावणः श्रविष्ठः शातभिषजः प्रौष्ठपदः औत्तरप्रौष्ठपदः रैवत इति नक्षत्राश्रयनिर्देशः। आश्विनः याम्यः आग्नेयः प्राजापत्यः सौम्यः रौद्रः आदित्यः बार्हस्पत्यः सार्पः पित्र्यः आर्यमणः भागः सावित्रः ऐन्द्रः वायव्यः ऐन्द्राग्नः मैत्रः ऐन्द्रः पित्र्यः आप्यः वैश्वदेवः वैष्णवः वासवः ऐन्द्रः अजएकपादः अहिर्बुध्न्यः पौष्णः इति देवताश्रयनिर्देशः ॥१२॥

उत्सृज्यापो देवस्य त इति दक्षिणोत्तराभ्यां हस्ताभ्यामञ्जलिं गृह्णीयादाचार्यः ॥ १३ ॥

माणवकाञ्जलावुत्सृज्यासौशब्दे विष्णुशर्मन्निति वत् ब्रूयात् ॥१३॥

भा०—आचार्य उस कुमार के प्रति देखकर दो मन्त्रों का स्वयं

पाठ करे "ब्रह्मचर्यमागाम्" लड़के से पाठ करावे और "कोनामासि" मंत्र को पढ़ते हुये उस कुमार का नाम पूछे। तब आचार्य स्वयं अभिवादन समय में कहने योग्य नाम, दूसरा जन्म सूचक एक नया नाम कल्पित कर उस कुमार से "मैं अमुक नाम वाला, गुरो! आपको अभिवादन करता हूं"—कहवा कर तब लिये हुये जलाञ्जलि को छोड़ कर "देवस्य ते०" मंत्र को पढ़ते हुये दहिने हाथ से कुमार के अंगूठे के साथ दहिना हाथ पकड़े। वह नाम देवताश्रित, या नक्षत्राश्रित, या गोत्राश्रित होगा। देवताश्रित जैसे वेद गर्भ, ब्रह्म व्रत प्रभृति। नक्षत्राश्रित जैसे आश्विन रौहिण प्रभृति। गोत्राश्रित जैसे वैद, पैल्व प्रभृति ॥ ११। १२। १३॥

सूर्यस्येति प्रदक्षिणमावर्तयेत् ॥ १४ ॥

अञ्जलिं गृह्णन्नेव यावत्प्राङ्मुखः स्यात्तावदावर्तयेत्। असाविति पूर्ववत्॥ १४॥

भा०—इसके पश्चात् कुमार को प्रदक्षिण क्रम से पूर्व मुंह कर "सूर्यस्य०" मन्त्र का पाठ करे॥ १४॥

दक्षिणमंसमन्ववमृश्यानन्तर्हितां नाभिमालभेत्प्राणानामिति ॥ १५ ॥

अनन्तर्हितामेव पाणिभ्यां परितो गृह्णीयात॥ १५॥

भा०—पीछे आचार्य्य "प्राणानां ग्रन्थिरसि०" मंत्र को पढ़ते हुए दहिने हाथ से उस कुमार को दहिने कन्धे पर होकर वस्त्र आदि से ढका हुआ न हो ऐसी नाभि को स्पर्श करे॥ १५॥

अथैनं परिदद्यादन्तकप्रभृतिभिः ॥ १६ ॥

अनन्तर्हितमेव पाणिभ्यां परितो गृह्णीयात्। 'अन्तक इदं ते परिददाम्युदरम्' इत्युदरम्, 'अहुर इदं ते परिददाम्युरः' इत्युरः, 'कृशन इदं ते परिददामि कण्ठम्' इति कण्ठम्॥ १६॥

दक्षिणमंसं प्रजापतये त्वेति ॥ १७ ॥

दक्षिणेन पाणिना गृह्णीयादिति शेषः। इतः प्रभृत्यसौशब्दे विष्णुशर्मन्निति वन्माणवकनाम ब्रूयादाचार्यः॥ १७॥

भा०—बालक के नाभि देश में हाथ चलाकर आचार्य 'अहुर:०' मंत्र पढ़े। इसी प्रकार हृदय देश में हाथ चलाकर "कृशन:" मंत्र पढ़े फिर आचार्य दहिने हाथ से बालक के दहिने कन्धे को स्पर्श कर "प्रजापते त्वा०" मंत्र पढ़े ॥ १६ । १७ ॥

सव्येन सव्यं देवाय त्वेति ॥ १८ ॥

सव्येन पाणिना सव्यं गृह्णीयादित्यर्थः ॥ १८ ॥

भा०—इसी प्रकार बायें हाथ से बालक के बायें कन्धे को स्पर्श कर "सवित्रे त्वा०" मंत्र को पढ़े ॥ १८ ॥

ब्रह्मचार्यसीति ॥ १९ ॥

विष्णुशर्मन्निति वन्माणवकमुक्त्वा ॥ १९ ॥

भा०—उसके पश्चात् आचार्य बालक को तुम आज से इस नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मचारी होते हो, प्रतिदिन सायं प्रातः अग्नि में समिद् का आधान करना, शौचाचार से रहना, दिन में न सोना ॥ १९ ॥

संप्रेष्योपविश्य दक्षिणजान्वक्तमञ्जलिकृतं प्रदक्षिणं मुञ्ज-मेखलामावध्नन्वाचयेदियं दुरुक्तादिति ॥ २० ॥

'समिधमाधेहि' इत्यादिभिश्चतुर्भिःप्रेष्योदगग्रेषु दर्भेषूपविष्टं नमस्काराञ्जलिकृतं त्रिवृत्कृतां मुञ्जमेखलां प्रदक्षिणं त्रिः परिवारयन्नाचार्यो माणवकं मन्त्रे वाचयेत् ॥ २० ॥

भा०—फिर आचार्य उस बालक को मूंज की बनी मेखला तीन फेरा करके पहनावे और पहनाते समय "इयं दुरुक्तम्०" और ऋतस्य गोपुत्री" दो मंत्रों को पढ़ावे ॥ २० ॥

अधीहि भो इत्युपसीदेत् ॥ २१ ॥

अग्नेः पश्चात् स्वस्थान आचार्य उपविष्टे पूर्ववत् प्रत्यागम्य दक्षिणेन पाणिना सव्यं पाणिमनङ्गुष्ठमुपसंगृह्य 'अधीहि भो' इति दक्षिणत उदगग्रेषु प्राङ्मुख उपविशेत्, आचार्याभिमुखे चक्षुर्मनसी कृत्वा प्रागग्रेषु वोदङ्मुखः। अयं विशेषः स्मृत्यन्तराद्गम्यते। आचार्यश्च तथा कारयेत्। तदेतदाचार्यस्य समीपनयनं उपनयनं उपनयनशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तम्। अथोपरिष्टाद्धोमादि समापयेत्। नन्वेवं सति

सावित्र्यध्यापनादेर्होमप्रयोगान्तर्भावो न स्यात्। नायं दोषः 'उपनयीत तमध्यापयेत्' इति उपनयनोत्तरकालं सावित्र्यश्रवणादध्यापनस्य। ननु वेदाध्यापनं तत्रोक्तं, इह तु सावित्र्यध्यापनम्। नायं दोषः, सर्ववेदाध्यापनोपक्रमरूपत्वात्सावित्र्यध्यापनस्य। तथा हि—'सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यस्सावित्र्यनूच्यत इति हि ब्राह्मणम्'। अपि च सर्ववेदात्मकत्वं सर्वसारत्वं च सावित्र्यादीनां श्रुतिस्मृतिषु श्रूयत एव। तथाहि—'त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्' इत्यादिभिः। अत उपरिष्टाद्धोमादि समाप्यैव सावित्र्यध्यापनम्॥२१॥ अत ऊर्ध्वं सावित्र्यादेरध्यापनप्रकारमाह—

भा०—अनन्तर कुमार गुरु के पास हाथ जोड़ कर नम्रता से प्रार्थना करे कि 'हे गुरो! मुझे वेद पढ़ावें' और सावित्री का उपदेश करें॥ २१॥

तस्मा अन्वाह सावित्रीं पच्छोऽर्धर्चशस्सर्वामिति ॥ २२ ॥

पादेपादेऽवसायाध्यापयीत, ततः पादद्वयेऽवसाय, ततस्सर्वां संहत्य॥ २२॥

महाव्याहृतीश्चैकैकशः ॥ २३ ॥

भूर्भुवस्स्वरिति प्रत्येकमवसाय॥ २३॥

ओंकारं च॥ २४ ॥

ओमिति चाध्यापयीत॥ २४॥

भा०—कुमार के प्रार्थना करने पर आचार्य्य उस कुमार को पहिले एक २ चरण करके फिर आधी २ ऋचा और पुनः पूरी ऋचा वार २ आवृत्ति करावे उसके पश्चात् "भूः, भुवः, और स्वः" इन तीन महाव्याहृतियों को अलग २ और "ओम्" कार भी अभ्यास करावे॥ २२। २३। २४॥

प्रयच्छत्यस्मै वार्क्षं दण्डम्॥ २५ ॥

स्मृत्युक्तं दण्डं प्रयच्छेदाचार्यः॥ २५॥

सुश्रवस्सुश्रवसं मेति॥ २६ ॥

प्रतिगृह्णीयादिति शेषः॥ २६॥

भा०—पश्चात् आचार्य्य इस कुमार के हाथ में पलाश वृक्ष का दण्ड देकर "सुश्रवसः सुश्रवसं मा कुरु०" मंत्र को पढ़ावे ॥ २५ । २६ ॥

समिधमादध्यादग्नये समिधमिति ॥ २७ ॥

यज्ञियां समिधं तस्मिन्नेवाग्नावादध्यान्माणवकः । औपासनवदुभयतः परिषेचनम् ॥ २७ ॥

भा०—"अग्नये समिधम्०" मन्त्र को पढ़ कर अग्नि में समित् डाले ॥ २७ ॥

भैक्षं चरेत् ॥ २८ ॥

भवति भिक्षां देहीति ब्राह्मणः । भिक्षां भवति देहीति क्षत्रियः । भिक्षां देहि भवतीति वैश्यः । दण्डहस्त आदित्यमुपस्थायाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य भैक्षं याचेत ॥ २८ ॥

मातरमग्रे ॥ २९ ॥

प्रथमं मातरं याचेत ॥ २९ ॥

अथान्यास्सुहृदः ॥ ३० ॥

सुहृद इति स्त्रीपुंसयोस्साधारण्यात् स्त्रीनियमार्थमन्या इति विशिनष्टि ॥ ३० ॥

आचार्याय भैक्षं निवेदयेत् ॥ ३१ ॥

भैक्षमिदमुपयुज्यतामिति ब्रूयात् । आचार्योऽपि गृह्णीयात् प्रतिप्रयच्छेद्वा यथारुचि । उपनयनं वेदाध्ययनाङ्गं पुरुषसंस्कारद्वारेण तद्धर्ममेव क्रियमाणमपेक्षते 'अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्च द्विजातीनाम्' इत्यधिकृत्य विधानादुपनयनाच्च द्विजातित्वसिद्धेः । अत उपनयनरहितानां तेष्वनधिकारः । न केवलं वैधत्वं किंतु निषेधात्प्रत्यवायश्च ॥ ३१ ॥

भा०—इस प्रकार उपनयन होने पर बालक भिक्षाचरण करे पहिले माता से भिक्षा मांगे, उसके पश्चात् माता के दो सुहृद् के पास या उस स्थान में जितनी स्त्रियां उपस्थित हों माता से आरम्भ कर सब ही के पास भिक्षा माँगे और भिक्षा जो मिले उसको आचार्य्य के पास निवेदन करे ॥ २८ । २९ । ३० । ३१ ॥

तिष्ठेदाऽस्तमयात्तूष्णीं ॥ ३२ ॥ त्रिरात्रं क्षारलवणदुग्ध-
मिति वर्जयेत् ॥ ३३ ॥

स्पष्टे सूत्रे ॥ ३२-३३ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ द्वितीयस्य पटलस्य
चतुर्थः खण्डः ॥ २।४ ॥

भा०—उपनयन सम्बन्धी यज्ञिय कार्य करने पर जो दिन का शेष रह जावे, उतना समय कुमार चुपचाप स्थिरता से विश्राम करता हुआ बितावे ।

और उपनयन दिन से तीन दिन तक क्षार लवण न खावे और दुग्ध भी न पीवे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के दूसरे पटल के चौथे खण्ड का
भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ २।४ ॥

गोदाने चौलवत्कल्पः ॥ १ ॥

अष्टौ व्रतानि स्मर्यन्ते छन्दोगानां—उपनयनं, गोदानं, व्रातिकम् आदित्यव्रतं, माहानम्निक, औपनिषदं, भौतिकं, ब्रह्मसामव्रत, मिति । तेषामुपाकरणविसर्गौ च स्मर्येते । तत्रोपनयनं कृत्स्नाध्ययनार्थमपि सत् व्रतान्तरनिरपेक्षं सावित्र्यध्ययने तत्सामाध्ययने च उपकरोतीति व्रतान्तरत्वेन व्यपदिश्यते । निरपेक्षकारस्य च विसर्गः क्रियते उपनीतं वक्ष्यमाणान्यधश्शय्यादीनि स्मृत्युक्तानि च नियमानि समाचरन्तं सावित्रीं तत्साम चाध्याप्य यथाश्रद्धे काले गते हविष्यमेकभुक्तं भोजयित्वा प्रागुदयात्प्राङ्वोदङ् वा ग्रामान्निष्क्रम्य कमण्डलुनोदकं गृहीत्वा प्रागुदक्प्रवणे देशे गोमयेनोपलिप्य कुशैः प्रदक्षिणं मण्डलं कृत्वोदिते तेनोदकेनाचम्य दर्भमुष्टिं गृहीत्वा प्रह्वीभूतो वामदेव्येन मण्डलं प्रविशेदाचार्यः । शिष्यश्च तमन्वारभ्य तथा प्रविशेत् पुनराचम्य प्रपदान्तं कृत्वाऽन्वारब्धे व्याहृतिभिः हुत्वा 'इन्द्राय वृहद्भानवे स्वाहा, प्रजापतये मनवे स्वाहा' इत्याघारावाघार्याज्यभागौ हुत्वा 'अग्नये स्वाहा सोमाय

स्वाहा रुद्राय स्वाहेन्द्राय स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा प्रजापतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यस्स्वाहा ऋषिभ्यस्स्वाहा ऋग्भ्यस्स्वाहा यजुर्भ्यस्स्वाहा सामभ्यस्स्वाहा श्रद्धायै स्वाहा प्रज्ञायै स्वाहा मेधायै स्वाहा सावित्र्यै स्वाहा सदसस्पतये स्वाहाऽनुमतये स्वाहा' इति च हुत्वा होमं समाप्य कुशेष्वासीनो दक्षिणेन पाणिना कुशमुष्टिं धारयन् यथाविधं वक्ष्यमाणं तथाविधं श्रावयेत् ओंपूर्वा व्याहृतीः सावित्रीं चतुरनुद्रुत्य मनसा साम सावित्रीं च 'सोमं राजानं ब्रह्मजज्ञानम्' इति द्वे पञ्चनिधनं वामदेव्यं वैरूपं वाचोव्रते द्वे भद्रश्रेयसी च पूर्वं गीत्वा माणवकं गायत्रं श्रावयेत्। अथोपरिष्टात्सप्त महासामकल्माषवामदेव्यानि गीत्वा पुनरेकदेशं प्रणीयानुप्रवचनीयहोमः—अपदान्तं कृत्वाऽन्वारब्धे व्याहृतिभिर्हुत्वा पुनश्च समस्ताभिश्चतसृभिर्हुत्वा'अग्ने व्रतपते' इत्यादिभिः पञ्चभिर्ब्रह्मचारिणं हावयेत्। 'उपनयनव्रतमचारिषं तत्ते प्रावोचं तदशकं तेनारात्समिदमहमनृतात्सत्यमुपागाम् इति मन्त्रविकारः। ऋचं साम सदसस्पतिमिति चाज्यं जुहुयात्। उपरिष्टाद्धोमादि दक्षिणान्तं कृत्वा ततो वामदेव्येन क्रमशो निष्क्रमणं, ततो ब्राह्मणभोजनम्॥

अथ गोदानोपाकरणं–तत्र चौलवत् केशक्लृप्तिः वपनमित्यर्थः। वपनाङ्गत्वान्नापितादिरप्यतिदिश्यते, कृसरस्थालीपाकः माता त्र्यायुषमिति च त्रयं निवर्तते अतदर्थत्वात्। होमस्त्वस्ति–'एव चौलोपनयनगोदानेषु' इति वचनात्। समस्ताभिर्व्याहृतिभिः होमः कर्तव्यः॥ १॥

भा०—जो दान संस्कार में चूड़ाकरण की भाँति केशों के काटने में क्रियायें होगी। उपनयन काल से सोलहवें वर्ष में अर्थात् जिसका गर्भ काल से गिनती कर आठवें वर्ष में उपनयन हुआ है उसके गर्भ से २४ वें वर्ष में और जिसका नवम आदि सोलहवें वर्ष में उपनयन हुआ हो उसका २५ वर्ष से ३२ वर्ष की उमर में गोदान संस्कार करे। चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य वर्ण का जिस उमर में उपनयन हुआ हो उसको उस समय से १६ वर्ष और बीतने पर समावर्त्तन संस्कार होना चाहिये। जिस ब्रह्मचारी का गोदान संस्कार करना हो उसको केवल एक समय हविष्यान्न भोजन कराकर सूर्य्योदय से पहिले ग्राम से पूर्व

या उत्तर दिशा में ले जाकर कमण्डलु में जल लेकर पूर्व उत्तर ढलुआ जगह में गोबर से लीप कर कुशों से प्रदक्षिण क्रम से मण्डल करके उसी जल से आचमन कर कुश की मुट्ठी लेकर निहुर कर वामदेव्य गान कर आचार्य्य मण्डल में प्रवेश करे। और शिष्य आचार्य्य से अन्वारब्ध हो उसी प्रकार आचमन कर मण्डल में प्रवेश करे। और प्रपद तक की सारी क्रियाओं को अन्वारब्ध हुये करके व्याहृतियों से होम करके "इन्द्राय वृहद्भानवे स्वाहा" से लेकर "अनुमतये स्वाहा" तक मन्त्रों को पढ़ कर होम करके कुशों पर बैठा हुआ दहिने हाथ से कुश की मुट्ठी को धारण किये हुये यथाविधि वक्ष्यमाण मन्त्र को ज्यों का त्यों सुनावे। "ओं पूर्वक व्याहृति सावित्री को चार वार शीघ्र मन ही मन साम सावित्री को सुनावे। "सोमं राजानं ब्रह्म जज्ञानम्" इन मन्त्रों को सुनावे, और पञ्च निधन वाम देव्य वैरूप वाचो व्रते दो और भद्रश्रेयसी को पहिले जाकर ब्रह्मचारी को गायत्र को सुनावे। और ऊपर से सात महासाम, कल्माष,वामदेव्य को गाकर फिर एक देश को वेदी बना कर अनुप्रवचनीय होम- प्रपद तक की सब क्रियाओं को अन्वारब्ध हुये व्याहृतियों से आहुति करके फिर सारी व्याहृति से चौथी आहुति करके "अग्नेव्रतपते" इत्यादि पांच मन्त्रों से ब्रह्मचारी से हवन करावे। और 'उपनयनव्रतमाचरिषं तत्ते प्रावोचं तदशकं तेनारात् समिदमहमनृतात् सत्यमुपागाम्। यह मन्त्र का विकार है। फिर "ऋचं साम सदसस्पतिमिति" मन्त्रों से आज्य की आहुति देवे। ऊपर से होमादि दक्षिणा तक कर्म करके तब वामदेव्य गान गाते हुये निकले तब ब्राह्मण भोजन करावे॥ १॥

सलोमं वापयेत्॥ २॥

स्पष्टम्॥ २॥

भा०—ब्रह्मचारी जब केशों को कटवावे उस समय कक्ष, छाती, उपस्थ, और शिखा तक के रोमों को कटवावे॥ २॥

गोअश्वाविमिथुनानि दक्षिणाः पृथग्वर्णानाम्॥ ३॥

गोमिथुनमश्वमिथुनमविमिथुनं च यथाक्रमं ब्राह्मणादीनां गो-स्थाने स्यात् ॥ ३ ॥

सर्वेषां वा गौः ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ॥ ४ ॥

भा०-इस गोदान संस्कार की दक्षिणा, ब्राह्मण यदि ब्रह्मचारी हो तो अपने आचार्य को दो गौ देवे, क्षत्रिय हो तो छः घोड़े और वैश्य हो तो दो भेड़ा देवे । या ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों ही दक्षिणा में गौ ही देवें ॥ ३ । ४ ॥

अजः केशप्रतिग्रहाय ॥ ५ ॥

यः केशान् निखनेत् तस्मै देयः ॥ ५ ॥

भा०-केश, लोम आदि के कटवाने पर जो केशादि को फेंकता है उसको एक छाग देवे ॥ ५ ॥

उक्तमुपनयनम् ॥ ६ ॥

चौलवद्वपनान्तं कृत्वा पुनरेकदेशं प्रणीय उपनयनवत्कृत्स्नं कुर्यात् । 'गोदानव्रतं चरिष्यामि' इति मन्त्रविकारः । समीपनयनस्याध्यापनार्थत्वात् सावित्र्यध्ययनमपि तद्वदेव कुर्यात् । यदुपनयनं गोदानायापि तदेवोक्तमिति सूत्रयोजना ॥ ६ ॥

भा०—उपनयन संस्कार कहा गया ॥ ६ ॥

नाचरिष्यन्तं संवत्सरम् ॥ ७ ॥

यस्य संवत्सरं चरिष्यामीति बुद्धिस्तमेवेदं ग्राहयेत् । यस्य तु न चरिष्यामीति बुद्धिस्तं न ग्राहयेदित्यर्थः । तमपि केनाप्युपायेन तथाबुद्धिमुत्पाद्य ग्राहयेदेव ॥ ७ ॥

भा०-इस उपनयन के पीछे एक वर्ष काल भी जो ब्रह्मचारी व्रत का अनुष्ठान न करना निश्चित हो, उसको इतने कम दिन के लिये पुनः उपनीत होने की आवश्यकता नहीं ॥ ७ ॥

अनियुक्तं त्वहतम् ॥ ८ ॥

अनियुक्तमनियतं, तुशब्दोऽवधारणार्थः । अहतमेवानियतं सूत्र-

चर्ममेखलादण्डा नियता एव । असत्यवधारणे कृतकार्यतया तेषामपि निवृत्तिराशङ्क्येत, अतः पुराणानि त्यक्त्वा नवानि गृह्णीयात् ॥ ८ ॥

तथाऽलङ्कारः ॥ ९ ॥

अनियत इत्यर्थः ॥ ९ ॥ अथ व्रतिनो नियमा उच्यन्ते—

भा०—इस उपनयन में अखण्ड वस्त्र और अलङ्कार की आवश्यकता नहीं ॥ ८ । ९ ॥

अधस्संवेशी ॥ १० ॥

खट्वादिनिषेधकः ॥ १० ॥

भा०-खाट या दूसरी ऊंची शय्या पर न सोये किन्तु जमीन पर ही कम्बलादि बिछावन पर सोये ॥ १० ॥

अमधुमांसाशी स्यात् ॥ ११ ॥

स्पष्टम् ॥ ११ ॥

भा०-मांस मदिराका सेवन न कर केवल हविष्यान्न ही भोजन करे ॥ ११ ॥

मैथुनक्षुरकृत्यस्नानावलेखनदन्तधावनपादधावनानि वर्जयेत् ॥ १२ ॥

क्षुरकृत्यनिषेधो नोपरिच्छेदनस्य । दृष्टार्थस्य स्नानस्य निषेधो न विहितस्य । अवलेखनं स्पृश्यमलापकर्षणम् । पादधावनं नखकृन्तनादि ॥ १२ ॥

भा०—मैथुन न करे, छुरे से केशों को न कटवावे, विहित स्नान करे, (जल क्रीड़ापूर्वक न स्नान करे) अलका तिलक द्वारा दाँत न रंगे और आवश्यकता के अतिरिक्त बहुत देर तक पैर न धोना ।१२।

नास्य कामे रेतस्स्कन्देत् ॥ १३ ॥

कामे निमित्ते रेतस्स्कन्दनं न कुर्यात् । अनेनैव सिद्धे मैथुननिषेधो दोषभूयस्त्वसूचनार्थः ॥

भा०-भोग की इच्छा से वीर्य्यपात न करे ॥ १३ ॥

न गोयुक्तमारोहेत् ॥ १४ ॥

गवायुक्तं रथादि ॥ १४ ॥

भा०–बैल जुड़े रथ पर सवारी न करे ॥ १४ ॥

न ग्राम उपानहौ ॥ १५ ॥

उपानहौ ग्रामे वर्जयेत्, न बहिर्निषेधः । एषु सूत्रेष्वधिकवचनानि सजातीयस्मृत्युक्तोपसंग्रहणार्थानि ॥ १५ ॥

भा०–गाँव के भीतर जूता पहन कर न चले बाहर पहन कर जा सकता है ॥ १५ ॥

मेखलाधारणभैक्षचर्यदण्डसमिदाधानोपस्पर्शनप्रातरभिवादा नित्यम् ॥ १६ ॥

धारणग्रहणं वस्त्रसूत्रचर्मणामुपसंग्रहणार्थम् । भैक्षचर्यमुक्तेन प्रकारेण । चर्यग्रहणं सायंप्रातर्भैक्षभोजनार्थम् । दण्डेत्यस्यानन्तरं धारणशब्दोऽध्याहर्तव्यः । विनष्टानप्सु प्रास्यान्यानिमन्त्रेण गृह्णीयात् ।

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ।

अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥

इति मनुवचनाच्च । समिदाधानं 'देव सवितः प्रसुव' इति लौकिकेऽग्नौ परिचरणतन्त्रेण सायं प्रातश्च । आधानग्रहणं व्याहृतिभिश्च समस्तान्ताभिस्समिदाधानार्थम् । याज्ञिया एव समिधः । उपस्पर्शनं स्नानम् । प्रातरभिवादो गुरूणां कर्णसमौ बाहू उद्धृत्य व्यत्ययस्तेन पाणिना दक्षिणेन दक्षिणं पादं गृह्णीयात् सव्येन च सव्यम् । अभिवादये विष्णुशर्मनामाहमस्मि भो इतिवद्यथानाम । नित्यमिति समाप्तेष्वपि व्रतेष्वास्नानादनुवृत्त्यर्थम् । एते सर्वव्रतसाधारणाः 'अनियुक्तम्' इत्यारभ्योक्ताः ॥

भा०–मेखलाधारण, भीख मांग कर पेट भरना, दण्डधारण समिदाधान, जल से हाथ पैर धोकर ईश्वरोपासना और प्रातः उठकर गुरुजनों को अभिवादन ये पांच कर्म प्रतिदिन कर्त्तव्य हैं ॥ १६ ॥

गोदानव्रातिकादित्यव्रतौपनिषदज्येष्ठसामिकास्संवत्सराः ॥

संवत्सरं च कर्तव्या इत्यर्थः ॥ १७ ॥

भा०—और सर्वत्सर में गोदानिक वृत, आदित्य वृत, उपनिषद् वृत और ज्येष्ठ सामिक वृत किये जाते हैं ॥ १७ ॥

नादित्यव्रतमेकेषाम् ॥ १८ ॥

एकेषां शाखिनामादित्यव्रतं नास्ति येषां शुक्रियपाठी न विद्यत इत्यर्थः । अपरा व्याख्या—एकेषामाचार्याणां मतेन सर्वेषामेव शाखिनामादित्यव्रतं नास्तीति ॥ १८ ॥

भा०—किन्हीं आचार्य्यों का मत है कि सब ही शाखा-वालों के लिये आदित्य व्रत नहीं है ॥ १८ ॥

ये चरन्त्येकवाससो भवन्ति ॥ १९ ॥

न वाससां परिवर्तनं कुर्युः ॥ १६ ॥

आदित्यं च नान्तर्दधते ॥ २० ॥

छायागमननिषेधोऽयम् ॥ २० ॥

न चापोऽभ्युपयन्ति ॥ २१ ॥

स्नानार्थमपि नावगाहनं कुर्युः ॥ २१ ॥

भा०—जो लोग 'आदित्य व्रत' के साथ 'उपनिषद् व्रत' अवलम्बन करते हैं । उनको निम्नलिखित तीन व्रत अवलम्बन करना चाहिये । पहिले जब तक इस व्रत का अनुष्ठान करे, उत्तरीय वस्त्र का व्यवहार न करे, एक ही वस्त्र से निर्वाह करे । दूसरे तब तक घर और वृक्ष के अतिरिक्त सूर्य को न छिपावे, अर्थात् छाते आदि का व्यवहार न करे । तीसरा तब तक गुरु की विशेष आज्ञा बिना जानु परिमाण जल से सम अधिक जल में न जावे ॥ १६ । २० । २१ ॥

शक्वरीणां द्वादश नव षट्त्रय इति विकल्पाः ॥ २२ ॥

संवत्सरा इति वर्तते । विकल्पा इति विविधा एते कल्पाः न तुल्या इत्यर्थः । अनेन कालभूयस्तया फलभूयस्त्वं द्योत्यते ॥ अथ महानाम्नीव्रतिनो नियममाह—॥ २२ ॥

भा०—महा नाम्नी नाम से प्रसिद्ध सामानुशीलन साध्य व्रत करे । वह १२, ६, ६, ३ वर्षों में पूरा होगा ये बारह आदि वर्ष पूर्वोक्त

१६ वर्ष से अतिरिक्त हैं । जो लोग इस काम्य व्रतके अनुष्ठान करने की इच्छा करें १६ वर्ष में गोदान आदि चारों व्रत अनुष्ठान करके अवश्य कर्त्तव्य ब्रह्मचर्य समाप्त कर और यथासामर्थ्य १२, ९, ६ या ३ वर्ष और भी ब्रह्मचर्य करें ॥ २२ ॥

कृष्णवस्त्रः ॥ २३ ॥

कृष्णस्तु वर्णविशेषः, आर्द्रवस्त्रता वा ॥ २३ ॥

कृष्णभक्षः ॥ २४ ॥

नीरसाहारः अपक्काहारो वा ॥ २४ ॥

भा०—काला रंगा हुआ या मलिन वस्त्र व्यवहार करे । भला बुरा विचार को छोड़कर जब जो भोजन मिले उसीको खावे ।२३।२४॥

आचार्याधीनः ॥ २५ ॥

असत्यप्यध्ययने तत्प्रियकारी स्यात् ॥ २५ ॥

भा०—सर्वथा आचार्य के आज्ञाकारी होवे ॥ २५ ॥

तिष्ठेद्दिवा ॥ आसीत नक्तम् ॥ २६—२७ ॥

स्पष्टे ॥

भा०—दिन में खड़ा रह कर दिन काटे और रात्रि में सोवे या बैठे परन्तु खड़ा न होवे ॥ २६ । २७ ॥

संवत्सरमेकेषां पूर्वैः श्रुताश्चेन् ॥ २८ ॥

यस्य पित्रादिभिस्त्र्यवरैश्शक्वर्योऽधीताः स संवत्सरं चरेदित्येके मन्यन्ते ॥ २८ ॥

भा०—किन्हीं आचार्यों का मत है कि जिस ब्रह्मचारी ने पिता आदि से हीन या कम शक्करी पढ़ी हो वह साल भर तक उक्त व्रत करे ॥ २८ ॥

उपोषिताय परिणद्धाक्षायानुगापयेत् ॥ २९ ॥

'व्यत्ययो बहुलम्' इति द्वितीयास्थाने तादर्थ्यवाचिचतुर्थी कृता तदर्थानां धर्माणां बाहुल्यं सूचयितुम् । ते च धर्मानिदानकारेणोक्ताः आचारसिद्धाश्च वेदितव्याः । तान् वक्ष्यामः । महानाम्न्यध्ययनकाले

आचार्यशिष्ययोर्हस्तेनोदकधारणम्, एको वा द्वौ वा गायेतां न बहवः, सकृदृचमुक्त्वा साम च सकृदेव पुरीषपदमुक्त्वा पुनः पादशः सकृद्ब्रूयात्, नावर्तयेदेकस्मिन् दिने। व्रतचरणकाले सायंप्रातस्स्नानं, वर्षति चरणं नातीयात्। नात्रोपेक्षा कर्तव्या कृत्स्नवेदतुल्यत्वात् अस्य साम्नः। व्रतचरणकाले पूर्णेऽहोरात्रं वाग्यतं उपवसेत्। प्रागस्तमयादहतेन वाससा चक्षुषी पिधाय रात्रावासीत। अथ परेद्युरुपोषितं परिणद्धाक्षं वाग्यतमुपनयनवच्छेद्य पर्यन्तं गीत्वा शक्करीर्गापयेत् श्रावयेद्वा श्रावणविधिवचनात्। अनु सादृश्यार्थः। अध्ययनकालवदुदकधारणमृग्जपश्चेत्यर्थः प्रतिस्तोत्रीयं पुरीषपदाभ्यासो विशेषः॥ २९॥

भा०—अभोजन और ब्रह्मचारी की आंखों को बन्द करके उसे आचार्य शक्करी छन्द के तीन स्तोत्रीय गान करावे, इस गान को महानाम्नी साम कहते हैं॥ २९॥

यथा मा न प्रधक्ष्यतीति तं प्रातरभिवीक्षयन्ति, यान्यप्रधक्ष्यन्तं मन्यन्तेऽपोऽग्निं वत्समादित्यम्॥ ३०॥

शक्करीगानानन्तरं यथा वीक्षणे कृते मां दग्धुं न शक्ष्यति माणवक इत्याचार्यो मन्यते तथा तं वीक्षयेत् प्रातःकाले। अभीत्यनन्यवीक्षणार्थम्। बहुबचनं गुरुत्वात्पूजार्थम्। यानि दग्धुमशक्तं मन्यन्ते तानि वीक्षयेत्। कानि पुनस्तानि? अबादीनि॥ ३०॥

तेषां वीक्षणमन्त्रान् क्रमश आह—

शक्करी गान के पीछे प्रातःकाल आचार्य यह समझे कि कुमार को ऐसे देखने में कुमार मुझे न जला सकेगा, उस भांति उसे देखे। जिन पदार्थों को जलाने में असमर्थ समझे उनको देखे, वे हैं जल, अग्नि, वत्स और आदित्य॥ ३०॥

अपोऽभिव्यख्यमित्यपो ज्योतिरभिव्यख्यमित्यग्निं पशूनभिव्यख्यमिति वत्सं सुरभिव्यख्यमित्यादित्यं विसृजेद्वाचम्॥ ३१॥

वाग्यमननियमं त्यजेत् नावश्यं भाषेत॥ ३१॥

भा०—उनको देखने के मन्त्र हैं जैसे—"अपोऽभिव्यख्यम्" मंत्र पढ़ कर जल को, "ज्योतिरभिव्यख्यम्" मन्त्र पढ़ कर अग्नि को, "पशू-

नभिरूपम्" मन्त्रसे वत्सको और "सुरभिरूपम्" मन्त्रसे आदित्य को देखे, इसके बाद कुमार ब्रह्मचारी वाक्य संयमका त्याग करे ॥३१॥

गौर्दक्षिणा ॥ ३२ ॥

वीक्षिता गौराचार्याय देया माणवकेन ॥ ३२ ॥

भा०-जिस गौ को आचार्य ने देखा है उसको कुमार आचार्य को दक्षिणा में देवे ॥ ३२ ॥

कंसो वासो रुक्मश्च ॥ ३३ ॥

कंसपूर्णा आपः तत्र रुक्मं निधाय वीक्षेत, तं कंसं रुक्मं च पिधानार्थं च वस्त्रमाचार्याय दद्यात् ॥ ३३ ॥

भा०-और कांस्यपात्र, वस्त्र और चांदी भी अर्थात् जल भरा कांस्यपात्र उस पर चाँदी का ढक्कन रख कर देखे, और वस्त्र ढाकने के लिये आचार्य को देवे ॥ ३३ ॥

अनुप्रवचनीयेष्वृचं साम सदसस्पतिमिति चाज्यं जुहुयात्॥

प्रवचनात् पश्चात् क्रियत इत्यनुप्रवचनीयहोमः। चकारस्समुच्चयार्थः। उपनयनविसर्गेऽस्माभिरुक्तानाम्। आज्यमिति प्रतिनिधिवर्जनार्थं, अलाभेऽपि कालोत्कर्ष एवेति। संहिताश्रवणरहस्यविधयो गृह्यविशेषाद्द्रष्टव्याः। सर्वानुसारेणास्माभिरुपनयनमुक्तम्। अथोक्तेन प्रकारेण गोदानव्रतमुपाकृत्य तस्मिन् संवत्सरे, 'अग्न आयाहि' इत्यादि, 'वर्मीव धृष्णु वारुज' इत्यन्तमृचमध्याप्य 'ओग्नायी' इत्यादीनि चाग्नेयैन्द्रपावमानानि पर्वाण्यध्यापयीत। पूर्णे संवत्सरे उपनयनविसर्गवद्विसर्गं कुर्यात्। नात्र प्रागुदयात् गमननियमः वामदेव्येन प्रवेशनिष्क्रमणे वामदेव्यादीनि श्रेयोऽन्तानि सप्ताहादीनि कल्मापान्तानि च निवर्तन्ते। गायत्रस्य स्थाने आग्नेयैन्द्रपावमानानि पर्वाणि श्रावयेत्। अशक्तश्चेत् पर्वाद्यन्तानि सामानि, 'सोमं राजानम्', 'इत एत उदारुहन्', 'स पूर्व्यो महो नाम', 'अभित्रिपृष्ठम्' इति च श्रावयेत्। अनुप्रवचनीये गोदानव्रतमचारिषमिति मन्त्रविकारः। अथ व्रातिकमुपनयनवत्सर्वं कुर्यात। व्रातिकमिति मन्त्रविकारः। तस्मिन् संवत्सरे, 'इन्द्रज्येष्ठं न आभर' इत्यादि, 'सुप्रपाण इहस्ते' इत्यन्तमृचमध्याप्यार्कद्वन्द्वव्रतानि छान्दसानि

त्रीणि पर्वाण्यध्यापयीत । आदित्यव्रताभावपक्षे शुक्रीयमपि पूर्णे संवत्सरे उपनयनविसर्गवद्विसर्गं कुर्यात् । गायत्रस्य स्थाने छान्दसानि पर्वाणि श्रावयेत् अशक्तौ गोदानव्रतवत् । व्रातिकादित्यव्रतमहानाम्निकौपनिषदेषु नास्ति संहिताहोम इति केचित् । श्रावणवत्पूर्वो होमस्संहिताध्ययनार्थत्वात् संहिताहोम इत्युच्यते । इमं होमं हुत्वाऽऽग्नेयादीनां पर्वणां चाध्ययनं संहिताध्ययनमित्युच्यते । व्रातिकव्रतानन्तरमादित्यव्रतं तस्य व्रातिकवदुपाकरणम् । तस्मिन् संवत्सरे शुक्रियाध्ययनं तदङ्गैस्सह । उपनयनविसर्गवद्विसर्गं कुर्यात् । गायत्रस्य स्थाने शुक्रियाणि । अशक्तौ पूर्ववत् 'आदित्यव्रतम्' इति मन्त्रविकारः । अथ महानाम्निकस्योपनयनवदुपाकरणविसर्गौ । 'महानाम्निकव्रतम्' इति मन्त्रविकारः गायत्रस्य स्थाने शक्वर्यः । शेषमुक्तम् । अथोपनयनवदौपनिषदव्रतम् । 'उपनिषद्व्रतम्' इति मन्त्रविकारः । गायत्रस्य स्थाने 'देव सवितः' इत्यादि 'न च पुनरावर्तते' इत्येवमन्तं स्यात् । कृत्स्नश्रवणाशक्तौ यजुरोंकारादित्यप्राणानामाद्यन्तानि वाक्यानि सोमं राजादीनि च श्रावयेत् । अथ ज्येष्ठसामव्रतमुपनयनवत्सर्वम् । 'ज्येष्ठसामव्रतम्' इति मन्त्रविकारः 'भौतिकव्रतम्' इति वा । गायत्रस्य स्थाने आज्यदोहादित्रियम् । अथ ब्रह्मसामव्रतमेवम् । रुच्या चरणकालनियमः । 'ब्रह्मसामव्रतम्' इति मन्त्रविकारो गायत्रस्य स्थाने तवश्यावीयम् । 'ऊक्' इत्यादिः 'हिंवम्' इत्यन्तं तवश्यावीयमिति केचित् ॥ इलान्दं पञ्चानुगानमिति केचित् । गोदानादीनि चत्वार्येव व्रतानि चत्वारि वेदव्रतानि' इति गौतमवचनात् । आदित्यव्रताभावपक्षे औपनिषदसंहितानि चत्वारि स्युः । व्रतचतुष्टयपक्षे तूपनयनं सर्वार्थत्वान्न गण्यते व्रतत्वेन । व्रतापेक्षाणां वेदभागानां व्रतकालेऽध्ययनाशक्तौ व्रतकालोत्कर्षः कार्यः । समाप्य वा व्रतनियतकालमधीयीत । इतरस्य तु वेदभागस्य न कालनियमः तथा वेदाङ्गानाम् ॥ ३४ ॥ अथ प्रकृतमनुसरामः—

भा०—इन्द्र देवताक स्थालीपाक चरु प्रस्तुत करे और इस चरु को यथाभाग ग्रहण कर "ऋचं साम यजामहे०" मन्त्र या "सदसस्पतिमद्भुतम्" मन्त्र पढ़ते हुये आज्य की आहुति देवे ॥ ३४ ॥

चैत्ययूपोपस्पर्शनकर्णक्रोशाक्षिवेपनेषु सूर्याभ्युदितस्सूर्याभिनिर्मुक्त इन्द्रियैश्च पापस्पर्शैः पुनर्मामित्येताभ्यामाहुतिं जुहुयात् ॥ ३५ ॥

यूपाग्निचयनयोः कर्मापवर्गादूर्ध्वमुपस्पर्शने दोषोस्तीति तन्निर्हरणार्थमिदं, श्रोत्रे शब्दिते वामचक्षुकम्पे च दुर्निमित्तत्वात्तन्निर्हरणार्थं, स्वपन्तं सूर्योऽभ्युदियादस्तमियाद्वा तत्र दोषनिर्हरणार्थं, मनसा निषिद्धे चिन्तिते चक्षुषा निषिद्धे दृष्टे श्रोत्रेण निषिद्धे श्रुते घ्राणेन निषिद्धे आघ्राते वाचा निषिद्धे भाषिते एवमिन्द्रियैः पापकृद्भिर्युक्तस्तद्दोषनिर्हरणार्थं जुहुयात् आज्यतन्त्रेण, परिचरणतन्त्रेण वा 'पुनर्मनः' इति द्वितीयमन्त्रादिः ॥ ३५ ॥

भा०—आश्चर्य्यजनक घटना होने पर अर्थात् अचानक वीद्धरूप प्रकट होने, कान में किसी प्रकार का शब्द होने, नेत्रों में स्फुरण होने और सूर्योदय के पीछे जागने, या सूर्यास्त समय नींद आने और भी हाथ आदि इन्द्रियों के द्वारा पराई स्त्री के स्तनों पर स्पर्श करने पर "पुनर्मामैत्विन्द्रियम्०" इत्यादि दो मंत्रों से दो आज्य की आहुति देवे ॥ ३५ ॥

आज्यलिप्ते वा समिधौ ॥ ३६ ॥

समित्तन्त्रेण ॥ ३६ ॥

भा०—यदि अतिरिक्त पाप स्पर्श न हो जावे तो घी से लपेटी दो समिधा अग्नि में डाले ॥ ३६ ॥

जपेद्वा लघुषु जपेद्वा लघुषु ॥ ३७ ॥

अल्पेषु पापेषु। द्विरुक्तिरादरार्था। पटलसमाप्त्यर्था वा ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ द्वितीयस्य पटलस्य पञ्चमः खण्डः

समाप्तश्च द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥ ५ ॥

भा०—और यदि छोटा पाप हो तो उक्त दोनों मन्त्रों को मन ही मन जप करे ॥ ३७ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के दूसरे पटल के पञ्चम खण्ड का भाषानुवाद पूरा हुआ ॥ २ ॥ ५ ॥

आप्लवने पुरस्तादाचार्यकुलस्य परिवृत आस्ते ॥ १ ॥

'तयोराप्लवनं पूर्वम्' इत्युक्तमिदानीं पुरुषस्योच्यते। आप्लवनं स्नानम्। अत्र कर्त्रन्तरानिर्देशेन स्वयमेव सर्वं कुर्यात्। आचार्यगृहस्याग्रे भागे प्रावृते देशे उदगग्रेपूपविशेत् ॥ १ ॥

भा०-अब "विधिपूर्वक स्नान" को कहते हैं। विवाह करने के लिये आचार्य की आज्ञा पाने के पश्चात् ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य की समाप्ति सूचक स्नान करे आचार्य के परिवार के रहने के घर से उत्तर या पूर्व दिशा में अच्छे प्रकार आच्छादित एक स्नान घर बनवावे ॥ १ ॥

उदङ्मुख आचार्यः प्रागग्रेषु ॥ २ ॥

तस्य दक्षिणत उपविशेत् ॥ २ ॥

भा०—इस स्नानागार में पूर्वाग्र डाले हुये कुशासन पर उत्तर मुंह हो आचार्य बैठे कुमार के दक्षिण भाग में और उत्तराग्र डाले हुये कुशों पर पूर्व मुंह हो ब्रह्मचारी बैठे ॥ २ ॥

एवं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ३ ॥

नित्ये कामोपबन्धोऽयम् ॥ ३ ॥

भा०-ब्रह्म तेज चाहने वाले तो पूर्वोक्त प्रकार बैठें ॥ ३ ॥

गोष्ठे पशुकामः ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ॥ ४ ॥

भा०-परन्तु जिसको पशु वृद्धि की कामना हो, वह गोशाला में स्नान करे ॥ ४ ॥

सभायां यशस्कामः ॥ ५ ॥

ब्रह्मस्थाने ॥ ५ ॥

भा०-और यश की कामना वाले वेद पढ़ाने की जगह स्नान करें ॥ ५ ॥

सर्वौषधेनापः फाणयेत् ॥ ६ ॥

सर्वैरोषधिफलैर्यथालाभं संयोज्याग्निनाऽपः फाणयेत् तापयेत् यः कश्चित् ॥ ६ ॥

भा०-सुगन्ध, कच्चा, पक्का, मिला +सर्वौषधि नामक ओषधियों से फाण्ट (सब द्रव्यों को कूट गरम जल में छोड़ कर कपड़े से ढाक देकर जल का नाम फाण्ट है) ॥ ६ ॥

सुरभिश्च ॥ ७ ॥

सुगन्धिभिश्च संयोजयेदपः ॥ ७ ॥

भा०-सुगन्धियों से उस जल को युक्त करे ॥ ७ ॥

ताभिश्शीतोष्णाभिराचार्योऽभिषिञ्चेत् ॥ ८ ॥

तत्ताभिश्शीतोदकसंयुक्ताभिश्शिष्यमूर्धन्यवसिञ्चेद्वक्ष्यमाणप्रकारेण ॥ ८ ॥

भा०-फाण्ट किये जल से आचार्य ब्रह्मचारी को अभिषिञ्चन करे ॥ ८ ॥

स्वयं वा मन्त्राभिवादात् ॥ ९ ॥

मामिति मन्त्रलिङ्गात् ॥ ९ ॥

भा०-या उसके पश्चात् ब्रह्मचारी स्वयं आपे को अभिषिञ्चित करे ॥ ९ ॥

उभावित्येके तेनेममित्याचार्यो ब्रूयात् ॥ १० ॥

'तेनाहं मामभिषिञ्चामि' इत्यत्र 'तेनेममभिषिञ्चामि' इति ॥

भा०-और कोई २ आचार्य कहते हैं कि दोनों ही अभिषिञ्चन करें ॥ १० ॥

ये अप्स्वन्तरित्यपामञ्जलिमवसिञ्चेत् ॥ ११ ॥

उदानयनवदन्यः पूरयेत् भूमाववाञ्चं सिञ्चेदभिषेक्ता ॥

भा०-स्वयं ब्रह्मचारी जब आपेको अभिषिञ्चन करे तब पहिले पाँच मंत्रों से जल की अञ्जलि से जल का व्यवहार करे अन्त में बाकी जल एक ही बार में अपने मस्तक पर ढार देवे । उनमें पहिले दो मंत्रों से लिया शेष अञ्जलि जल भूमि पर डाल कर तीसरे आदि तीनों मंत्रों

+ कूट, जटामांसी, हल्दी, वच, शिलाजीत, चन्दन लाल, कपूर, भद्रमुस्ता को सर्वौषधि कहते हैं।

से मस्तक आदि सब शरीर को सिंचन करे। "ये अप्स्वन्तरग्नयः०" मन्त्र से एक अञ्जलि जल पृथ्वी पर गेरे ॥ ११ ॥

यदपामिति च ॥ तूष्णीं च ॥ १२–१३ ॥

स्पष्टे ॥

भा०–फिर "यदपां०" मंत्र को पढ़कर एक अञ्जलि जल भूमि पर डाले और एक अञ्जलि जल विना मन्त्र पढ़े ही जमीन पर डाले ॥ १२ ॥१३ ॥

यो रोचन इति गृह्यात्मानमभिषिञ्चेत् ॥ १४ ॥

पूर्ववदञ्जलिना पूर्णं गृहीत्वा। गृह्येत्यसमासेऽपि बहुलवचनात् ल्यप् कृतोऽस्य बहुविषयत्वं द्योतयितुम्। अतो गृहीत्वा गृहीत्वाऽभिषेकः। आत्मानमिति शिष्योपलक्षणार्थं, अत्राचार्योऽपि शिष्यमेवाभिषिञ्चेत् ॥ १४ ॥

भा०—और "योरोचनस्तमिह०" मन्त्र से एक अञ्जलि जल ब्रह्मचारी अपने माथे आदि पर सिञ्चन करे ॥ १४ ॥

येन स्त्रियमिति च ॥ तूष्णीं च ॥ १५–१६ ॥

स्पष्टे ॥

भा०—और फिर "येन स्त्रिय०" इत्यादि मन्त्र को पढ़कर तीसरी अञ्जलि से अपना मस्तकादि सिञ्चित करे, और विना मन्त्र पढ़े चौथी अञ्जलि अपने माथे पर ढार देवे ॥ १५ । १६ ॥

उद्यन्नित्यादित्यमुपतिष्ठेत् ॥ १७ ॥

अनार्द्रेण वस्त्रेण परिधायाचम्योदगग्रेषु स्थित उपतिष्ठेच्छिष्यः ॥

भा० – इसके बाद नहाने की जगहपर भी सूखा कपड़ा पहन कर खड़े हो "उद्यन् भ्राजभृष्टिभिः०" मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र से सूर्य की आराधना करे ॥ १७ ॥

समस्येद्वा ॥ १८ ॥

'प्रातर्यावभिरस्थात् सान्तपनेभिरस्थात सायंयावभिरस्थात् दशसनिरसि शतसनिरसि सहस्रसनिरसि दशसनिं मा कुरु शतसनिं मा कुरु सहस्रसनिं मा कुरु' इति समासः ॥ १८ ॥

भा०—या मन्त्रों के लक्षण से जिसमें 'प्रातः' शब्द पढ़ा है उसी के अनुसार "प्रातर्यावभिरस्थान् सान्तपनेभिरस्थान् सायं यात्रभिरस्थान् दशसनिरसि शतसनिरसि सहस्रसनिरसि दशसनिं मा कुरु शतसनिं मा कुरु"-ऐसा समास कर-प्रयोग करे ॥ १८ ॥

त्रिहरन्नुसंहरेच्चक्षुरसीति ॥ १९ ॥

यथापाठं ब्रुवन् 'आविश' इत्येषामनन्तरं 'चक्षुरसि' इत्यादि त्रिरनुपज्य ब्रूयात् ॥ १६ ॥

भा०—उक्त तीन मन्त्रों में से जिसमें 'प्रातः' शब्द पढ़ा है उसका प्रातःकाल के उपस्थान में प्रयोग करे, और जिस मन्त्र में मध्याह्न बोधक 'सान्तपन' शब्द पढ़ा है उसको मध्याह्नकाल के उपस्थान में पढ़े और 'सायं" शब्द जिसमें पढ़ा है उस मन्त्र को सायंकाल के उपस्थान में पढ़े, चक्षुरसि चक्षुष्ट्वं मस्यव मे पाप्मानं जहि । सोम त्वा राजावतु नमस्तेऽस्तु मामा हि ꣳ सीः०" मन्त्र को प्रातःकाल आदि पढ़ने योग्य ("उद्यन् भ्राजभृष्टिभिः आदि) तीनों मन्त्रों के पीछे बांध देवे अर्थात् इन मन्त्रों के साथ यह मन्त्र सदैव अवश्य पढ़े ॥ १६ ॥

उदुत्तममिति मेखलामवमुञ्चेत् ॥ २० ॥

प्राश्यत्राशयेच्छिखावर्जं केशश्मश्रुलोमनखानि ॥ २१ ॥

स्पष्टे ॥

भा०-उसके पश्चात् "उदुत्तमम्०" मंत्र को पढ़ कर ब्रह्मचर्य समय की पहनी हुई मेखला को नीचे को त्याग देवे ॥ इस प्रकार स्नान कर मेखला त्यागने पर गृहस्थ आश्रम प्रवेश करते समय ब्रह्मचारी कई एक ब्राह्मण को भोजन करावे और पीछे आप भी भोजन करे और नापित से मूंछ, रोम, नख आदि कटवावे ॥ २० ॥ २१ ॥

अलंकृतोऽहतवाससा श्रीरिति स्रजं प्रतिमुञ्चेत् ॥ २२ ॥

द्वे नववस्त्रे परिधाय स्रजं वलयाकृतिं कृत्वा शिरसि प्रतिमुञ्चेत् ॥

भा०—उक्त प्रकार कर्मों के कर चुकने पर भूषण आदि पहन अखण्ड दो वस्त्र ऊपर नीचे पहन ओढ़ कर "श्रीरसि मयि रमस्व०, मंत्र पढ़ के माला को शिर में बांधे ॥ २२ ॥

नेत्र्यौ स्थ इत्युपानहौ ॥ २३ ॥

पादयोः प्रतिमुञ्चेत् ॥

भा०--नेत्र्यौस्थो नयतं माम्०' मन्त्रसे दोनों पैरोंमें जूता पहने ॥२३

वैणवं दण्डमादध्यात् गन्धर्वोऽसीति ॥ २४ ॥

स्मृत्युक्तलक्षणं दण्डं गृह्णीयादित्यर्थः ॥

भा०—अनन्तर "गन्धर्वोऽसि०" मन्त्र पढ़ के शास्त्रोक्त वर्णोचित दण्ड धारण करे ॥ २४ ॥

उपेत्याचार्यं परिषदं प्रेक्षेद्यक्षमिवेति ॥ २५ ॥

आचार्यसमीपं गत्वा संसदं पश्येन्मन्त्रेण ॥

भा०-उसके पश्चात् शिष्योंसे घिरेहुये आचार्यके पास बैठकर "यक्ष मिव प्रियोवो भूयासम्" मंत्र पढ़के आचार्य के परिषद् को देखे ॥ २५

उपविश्यौष्ठापिधानेति मुख्यान् प्राणानभिमृशेत् ॥ २६ ॥

दर्भेषूपविश्य चक्षुषी श्रोत्रे नासिके चाभिमृशेन्मन्त्रेण ॥

भा० – अर्द्धोपवेशन कर अपने मुख में आये हुये श्वास वायु का अनुभव करते हुये "ओष्ठापिधामा नकुली०मन्त्र पढ़े और कुशासन पर बैठ कर दोनों नेत्र,कान, नाकके छिद्र अभिमर्शन करे मंत्र पढ़कर ।२६

गोयुक्तं रथमालभेत् वनस्पत इति ॥ आस्थाता त इत्यारोहेत्॥ प्राचीं प्रयायोदीचीं वा प्रदक्षिणमावर्तयेत् ॥२७-२८-२९

स्पष्टानि ॥

भा०—इस प्रकार यात्रा के लिये बैल के रथ पर सवार होना हो तो उसके चक्र या जूआ को छूकर "वनस्पते० मंत्र पढ़े । और 'आस्थाता ते जयतु०' मंत्र पढ़ कर रथ पर सवार होवे । इस रथ पर पूर्व मुंह या उत्तर मुंह बैठकर रथ चलावे,और अपनी वासभूमि को चारों ओर प्रदक्षिण क्रम से घुमा कर चलावे । २७ । २८ । २९ ।

प्रत्यागतायार्घ्यमित्येके ॥ ३० ॥

प्रत्यागताय मधुपर्कं दद्यादाचार्यः ॥ उक्तमाप्लवनं, अत ऊर्ध्वं स्नातकस्य कृतविवाहस्याकृतविवाहस्य च साधारणधर्मानाह—

भा०—बहुत दिनों तक गुरुकुल में वासपूर्वक कृत ब्रह्मचर्य वेद पढ़े हुये ब्रह्मचारी को परिवार गण अर्घ्य आदिसे सत्कार करें ऐसा किन्हीं आचार्य की राय है ॥ ३०

वृद्धशीली स्यादत ऊर्ध्वम् ॥ ३१ ॥

दर्पादिपरिवर्जक इत्यर्थः ॥

भा०—ब्रह्मचर्य समाप्त करने पर विवाह के पहिले आश्रम सन्धि समय तक गृहस्थधर्म का पालन करे, उससे पिता, माता, प्रभृति बूढ़े लोगों की सेवा में परायण और सुपुष्ट बुद्धि होवे ॥ ३१ ॥

नाजातलोम्न्योपहासमिच्छेत् ॥ ३२ ॥

विवाहादूर्ध्वं मैथुनप्रसक्तौ अजातलोम्न्या असमर्थया मैथुनं तदर्थां चेष्टां च न कुर्यादित्यर्थः ॥

भा०—जिस कन्या को अन्तर्लोम न उत्पन्न हुये हों इस प्रकार रस से अनभिज्ञा बालिका के साथ उपहास करने की इच्छा न करे ॥३२॥

नायुग्व्या ॥ ३३ ॥

अस्वास्थ्येनाशक्त्यादिनाऽयोग्योपहासं नेच्छेत् पीडाहेतुत्वात् तस्याः ॥

भा०—उक्त प्रकार आदि मैथुन के अयोग्य (आयु, रूप, गुण, प्रभृति में) उपहास परित्याग करे ॥ ३३ ॥

न रजस्वलया ॥ ३४ ॥

स्वभार्यया आस्नानात् ॥

भा०—अपनी स्त्री जो रजोधर्म के कारण दूषित है उसके साथ भी मैथुन न करे ॥ ३४ ॥

न समानर्ष्या ॥ ३५ ॥

समानार्षेययाऽर्थाद्विवाहस्यापि प्रतिषेधः ॥

भा०—और न पर स्त्री के साथ उपहास करे ॥ ३५ ॥

अपरया द्वारा प्रपन्नद्विःपक्वपर्युषितानि नाश्नीयात् ॥३६॥

यच्च कुद्वारप्रवेशितं यच्च योग्यमेव द्रव्यं पक्वमेव पुनः पच्यते ।

व्रीहिमूलफलादेस्तु संस्कारार्थं द्विपक्वस्याप्रतिषेधः । यच्च पक्वमुषःकाल मत्येति तन्न भुञ्जीत ॥

भा०—अन्य किसी गुप्त रीति से प्राप्त अन्न भोजन न करे, दो बार का अन्न भोजन न करे, और पर्युषित अन्न भोजन न करे ॥३६॥

अन्यत्र शाकमांसयवपिष्टविकारेभ्यः ॥ ३७ ॥

द्विःपक्वपर्युषितयोरभ्यनुज्ञा ॥

पायसाच्च ॥ ३८ ॥

अन्यत्रेत्यनुवर्तते । चकारः पयोविकाराणां च संग्रहार्थः ॥

भा०—कंद, मूल, फलादि द्वारा तैयार किया हुआ मांस की नाईं यव आदि अन्न से सम्पन्न जलेबी आदि या अन्य किसी प्रकार का खाद्य मिष्टान्नादि वासी होने पर भी खावे इसमें पर्युषित होने का दोष नहीं ॥ ३७ । ३८ ॥

फलप्रचयनोदपानावेक्षणवर्षतिधावनोपानत्स्वयंहरणानि न कुर्यात् ॥ ३९ ॥

उत्पत्तिस्थाने प्रकीर्णाना फलानां सङ्घीकरणं प्रचयनम् । कूपादावर्वाङ्मुखनिरीक्षणम् । वर्षति सति तद्देशाद्धावनम् । स्वयोरुपानहोर्हस्तादिना धारणम् । रज्ज्वादिव्यवधाने न दोषः ॥

भा०—पानी वर्षते समय या वर्षने पर कीचड़ भरे रास्ते में दौड़ कर न चले, अपना जूता स्वयं हाथ में लेकर न चले । आम आदि फलों को पेड़ों से तोड़ कर स्वयं न जमा करे ॥ ३६ ॥

नागन्ध्यां स्रजं धारयन्न चेद्धिरण्यस्रक् ॥ ४० ॥

स्पष्टम् ॥

भा०—बिना गंध की माला को माथे में न धारण करे, परंतु सोने की माला तो गन्ध रहित होने पर भी धारण करे ॥ ४० ॥

भद्रमिति न वृथा व्याहरेत् ॥ ४१ ॥

भद्रमित्यकारणान्न वदेत् । उक्ता नियमाः ॥

जो वस्तु अच्छी न हो उसको अच्छा है ऐसा न कहे । ४१

पुष्टिकामो गाः प्रकालयेतेमा म इति ॥ ४२ ॥

पशुवृद्धिकामः प्रातर्गृहान्निर्गमयेत् ॥

भा०-चारण भूमि में चराने के लिये गौ आदि को घर से बाहर ले जाते समय "इमा मे विश्वतो वीर्यः" मन्त्र को पढ़े ॥ ४२

प्रत्यागता इमा मधुमतीरिति ॥ ४३ ॥

सायं प्रत्यागता अभिमन्त्रयेतेत्ययमेकः कल्पः ॥ अथापरः—

भा०-और जब चर कर गौ घर को आवे तो "इमा मधुमती०" मंत्र पढ़े । ४३ ।

पुष्टिकाम एव प्रथमजातस्य वत्सस्य प्राङ् मातुः प्रलेहनाल्ललाटमुल्लिह्य निगिरेत् गवामिति ॥ ४४ ॥

संवत्सरे पूर्वं जातस्य ॥

भा०-जो लोग पुष्टि की कामना करें, वे गौ के वत्स को जन्म के साथ ही जब तक उसकी अपनी मा उसको चाटे या न चाटे, पुरुष अपनी जीभसे वत्स का ललाट चाटे । यों चाटते समय मुंह में आये हुए लार को "गवां श्लेष्मासि०" मन्त्र मन ही मन पढ़ कर निगल जावे । ४४

संप्रजातासु गोष्ठे निशायां विलयनं जुहुयात् संग्रहणेति ॥

सर्वासु संप्रजातासु सायमाहुत्यनन्तरमाज्यतन्त्रेण । अयमप्येकः कल्पः ॥ अथापरः पुष्टिकामस्यैव—

जिनको पुष्टि की कामना हो, वे रात में गौ के बच्चा जनने पर घर में अच्छे प्रकार आग जलाकर "संग्रहणं संगृहाण" यह मंत्र पढ़ते हुये "विलयन" (आधा मठा हुआ दधि) होम करे । ४५ ।

Branding of ears अथापरं वत्समिथुनयोः कर्णे लक्षणं कुर्यात् भुवनमिति ॥

पुंसः स्त्रियाश्च कर्णेषु चिह्नार्थं छेदनं कुर्यात्स्वधितिना ॥

पुंसोऽग्रे ॥ ४७ ॥

प्रथममित्यर्थः ॥

भा०-जो लोग पुष्टि की इच्छा करें वे गूलर की लकड़ी की बनी

लाल तरवार से नये उत्पन्न बच्चे के दोनों कानों को इस प्रकार चिह्न कर देवें कि (यदि जोड़ा पैदा हुआ हो) पहिले बाछे को फिर बछिया को। दोनों कानों में चिन्ह करते समय "भुवनमसि साहस्र॰" मंत्रों को पढ़े। ४६। ४७॥

लोहितेनेत्यनुमन्त्रयेत् ॥ ४८ ॥

तूष्णीमन्यासामपि लक्षणं कृत्वा सर्वा एवानुमन्त्रयेत ॥

भा॰—उक्त प्रकार चिन्ह करने पर "लोहितेन स्वधितिना" मंत्र पढ़े। ४८॥

तन्तीं प्रसारितामियं तन्तीति ॥ ४९ ॥

निर्गतासु गोषु बन्धनार्थरज्जुमभिमन्त्रयेत। अयमप्येकः कल्पः। एते कल्पा अहरहराफलसिद्धेः कार्याः॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ तृतीयस्य पटलस्य
प्रथमः खण्डः ॥३।१॥

भा॰—"इयं तन्त्री गवां माता॰" मंत्र को पढ़कर वत्स को बांधने की रस्सी को सुखावे ॥ ४९ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्र के तीसरे पटल का पहिला खण्ड का
भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ३ । १ ॥

श्रावण्यां पौर्णमास्यां गृह्यादग्निमतिप्रणीय प्रतिदिशमुपलिम्पेदधिके प्रक्रमं ॥ १ ॥

श्रावण्यामित्येव सिद्धे पौर्णमास्यामिति अन्यत्रापि श्रावणीग्रहणे पौर्णमास्यर्थं 'श्रावणीमित्येके' इत्यत्र। इतरथा हस्ते स्यात् प्रकृतत्वात्। उपवसथ्येऽहनि पूर्वाह्णे पञ्चदश्यामेतत्कुर्यात्। यदि पूर्वाह्णे पञ्चदशी न विद्यते यजनीयेऽहनीदं कृत्वा पौर्णमासं कुर्यात्। एवमुत्तरेष्वपि कर्मसु निर्वापशून्यांस्तण्डुलान् गृह्येऽग्नौ भर्जितान् कृत्वाऽर्धं निधायार्धं सक्तून् कृत्वा ओप्य शूर्पे अग्नेरुत्तरतो दर्भेषु शूर्पमुदकपूर्णं पात्रमन्यच्चोदकपात्रं दर्वीं दर्भस्तम्बं च निधाय गृह्याग्नेः पुरस्तात् द्विपदमतीत्याग्नेर्दक्षिणतो

गत्वाऽग्न्युत्तरणान्तं कृत्वा गृह्याग्नेरेकदेशं प्रणीय तत्र निधाय तस्य प्रतिदिशमेकमेकं पदमतीत्य प्रागुपक्रमं प्रदक्षिणं गोमयेनोपलिम्पेत् ॥

भा०—अब श्रवण कर्म का आरम्भ करते हैं, वह कर्म्म श्रावण मास की पूर्णमासी में करना चाहिये। जिस घर में नित्य अग्निहोत्र का अग्नि स्थापित हो उसी घर के पुरोभाग में गौ के गोबर से लीप कर अग्निहोत्र से कुछ अग्नि लेकर अलग विधि पूर्वक प्रज्वलित करे। उस नये स्थापित अग्नि की चारों ओर चार स्थान भी गोबर से लीपे और प्रत्येक दिशा में कम से कम तीन पग स्थान लीपे ॥ १ ॥

सकृद्गृहीतान् सक्तून् दर्व्यां कृत्वा पूर्वोपलिप्ते निनीयापो यः प्राच्यामिति बलिं निर्वपेत् ॥ २ ॥

दक्षिणपश्चिमयोरुपलिप्तस्थानयोरन्तरोपविश्य पूर्णपात्रात्पात्रान्तरे किंचिदुदकं निनीय तदर्धं पूर्वस्मिन्नुपलिप्तस्थाने पाणिनाऽऽसिच्य तेनैव पाणिना दर्व्यां सक्तून् निधाय उपलिप्तस्थाने दर्व्या मन्त्रेण सक्तून्निदध्यात् ॥

भा०—इसके पश्चात् उस दर्वी से एक ही बार में पूरा सत्तू उठाले और पूर्व दिशा में गोबर से लीपे हुये स्थान में उस चमसपात्र में रक्खा जल सींच कर उसके ऊपर क्रम से "यः प्राच्यां०" मंत्र से बलि भाग रक्खे ॥ २ ॥

निनयेदपां शेषम् ॥ ३ ॥

शिष्टमर्धमपाम् ॥

भा०—उस चमस पात्र के बचे जल को उस बलि पर छींटे। इस जल को इस प्रकार छींटे जिससे बलि आदि बह न जावे ॥ ३ ॥

अप उपस्पृश्यैवं प्रतिदिशं यथालिङ्गम् ॥ ४ ॥

पाणी प्रक्षाल्य यथालिङ्गं मन्त्राः ॥

भा०—दोनों हाथ जल से धोकर जिस २ दिशा के विधायक जो २ मंत्र हैं उन मंत्रों से प्रत्येक दिशा में, उसी एक स्थान में रहते हुए थोड़ा बाईं ओर हटकर, फिर दक्षिण ओर एक बलि, पश्चिम

ओर एक और उत्तर ओर भी एक बलि रक्खे और उस २ बलि के देते समय शेष तीन मन्त्रों को अलग २ पढ़े ॥ ४ ॥

दक्षिणपश्चिम अन्तरेणाग्निं च संचरः ॥ ५ ॥

दक्षिणस्योपलिप्तस्याग्नेश्चान्तरेण पाणी प्रसार्य पूर्वे कुर्यात्। पश्चिमस्याग्नेश्चान्तरेणोत्तरे कुर्यात्। अनतिप्रणीतस्योत्तरत एव द्रव्याणि स्युः। तद्देशाद्यावदर्थमेवोपादायोपादाय बलिकर्म ॥

भा०—नैर्ऋत्य कोण में जाने आने का रास्ता छोड़कर, जहां चाहे उस सत्तू को रक्खे ॥ ५ ॥

शूर्पेण शिष्टानग्नावोप्यातिप्रणीतादनतिप्रणीतस्यार्धं गत्वा न्यञ्चौ पाणी कृत्वा नमः पृथिव्या इति जपेत् ॥ ६ ॥

सर्वान् सक्तूनतिप्रणीतेऽग्नावोप्यानतिप्रणीतस्य पश्चात् स्वस्थानं गत्वोपविश्यावाञ्चौ पाणी भूमौ निधाय जपेत् ॥

भा०—और अवशिष्ट सत्तू आदि उसी अग्नि में डालकर जिस अग्नि से कुछ आग लेकर यह अग्नि प्रस्तुत हुआ है उसी चिरस्थाई अग्नि के पास जावे। उस अनतिप्रणीत चिरस्थापित अग्नि के पीछे दोनों हाथ जमीन पर औंधे धर कर "नमः पृथिव्यै०" मन्त्र को पढ़े ॥ ६ ॥

तत उत्थाय सोमो राजेति दर्भस्तम्बमुपस्थाय ।

स्तम्बस्थान् सर्वान् मनसा ध्यायन् 'यां संधाम्' इति नमस्कुर्यान्मन्त्रलिङ्गात्। अतः परं प्रणीतस्य लौकिकत्वम् ॥

भा०-उस अग्नि के उत्तर भाग में मूल के साथ कुशपुञ्ज स्थापन कर "सोमो राजा०" मन्त्र और "यांᳫं सन्धांᳫं" मन्त्रों को पढ़े ॥ ७ ॥

अक्षतानादाय प्राङ् वोदङ् वा ग्रामान्निष्क्रम्य जुहुयादञ्जलिना हये राक इति चतसृभिः ॥ ८ ॥

निहितानक्षतान् गृहाग्निं च गृहीत्वाऽभ्युक्षणान्तं कृत्वाऽग्निं निधाय परिचरणतन्त्रेणाविच्छिन्नाङ्गुल्यग्रैर्जुहुयादाहुतिमन्त्रम् ॥

भा०—पूर्व कर्मों से कुछ अक्षत बलि बचा रक्खे। इसी को एक २ अञ्जलि कर "हये राके०" इत्यादि चार मन्त्रों से चार आहुति देवे यह होम गांव से बाहर निकल कर पूर्व या उत्तर दिशा में किसी चौराहे पर आग जलाकर करे ॥ ८ ॥

प्राङुत्क्रम्य जपेद्वसुवन एधीति त्रिस्त्रिः प्रतिदिशमवान्तरदेशेषु च ॥ ९ ॥

होमं समाप्योत्तरतोऽग्नेः प्राचीं गत्वा प्रागुपक्रमं प्रदक्षिणमग्नेरष्टासु दिक्षु तिष्ठन्नग्न्यभिमुखस्त्रिस्त्रिर्ब्रूयात् ॥

ऊर्ध्वं प्रेक्षन देवजनेभ्यः ॥ १० ॥

'वसुवन एधि' इति त्रिर्ब्रूयात् ॥

तिर्यङ्ङितरजनेभ्यः ॥ ११ ॥

तिर्यङ् प्रेक्षन् इतरजनेभ्यो मनुष्येभ्यः त्रिर्ब्रूयात् ॥

अवाङ्प्रेक्षन् प्रत्येत्यानवेक्षन्नक्षतान् प्राश्नीयात् ॥ १२ ॥

होमशिष्टानग्निं च गृहीत्वाऽनन्यचित्तो गृहं प्रत्यागम्य भक्षयेत् ॥

भा०—उसके पीछे मकान में फिरने के लिये चलकर रास्ते में किसी एक स्थान में ऊपर मुंह करके देवताओंके लिये "वसुवन एधि०" मन्त्र को पढ़कर देवे फिर पश्चिम मुंह हो, या दक्षिण मुंह हो, अर्थात् घर के सम्मुख होने ही से टेढ़ा होना पड़ेगा, उसी तिरछा होते समय नीचे देखकर अन्यान्य जीवों के लिये पुनः इस मन्त्र का पाठ करे। प्रत्येक दिशा और अवान्तर ८ दिशाओं में बलि देते समय उक्त मन्त्र को तीन तीन बार पढ़ता जावे और उस समय उस स्थान में जो सब आत्मीय लोग उपस्थित हों उनके साथ होम से बची सामग्री भोजन करे ॥ ६ । १० । ११ । १२ ॥

श्वोभूतेऽक्षतसक्तून् कृत्वा नवे पात्रे निधायास्तमिते बलीन् हरेदाऽऽग्रहायण्याः ॥ १३ ॥

पूर्ववत् सक्तुकरणं, नार्धनिधानम् । सायंहोमानन्तरं पूर्ववदेव प्रतिदिशं बलिनिधानं शूर्पवपनपर्यन्तं आ मार्गशीर्षपौर्णमास्याः ॥

भा०—उसके दूसरे दिन अपने पुत्र या पुरोहित आदि द्वारा यव का सत्तू प्रस्तुत कराकर नये पात्र में ढाक कर रक्खे। और इसी सत्तू से प्रतिदिन सायंकाल के पहिले पूर्ववत् बलिभाग यथा स्थान में प्रदान करे। अग्रहण महीने की पूर्णिमा के पूर्व दिन इसी प्रकार करे॥ १३॥

प्रौष्ठपदीं हस्तेनाध्यायानुपाकुर्युः॥ १४॥

प्रौष्ठपदे मासे हस्तेन युक्ते काले अध्यायान् वेदभागान् तदङ्गानि च उपविष्टास्संहता आचार्याश्शिष्याश्च। नोपनयनादिवत् प्रत्येकम्। आङ् आद्यर्थे। आदावादौ कुर्युः अधीयीरन् वक्ष्यमाणेन प्रकारेण। प्रौष्ठपदे हस्त इति वक्तव्ये बह्वन्यथोक्त' अन्यदपि बहुस्मृतिसमाचार-सिद्धमत्र कर्तव्यमिति सूचयितुम्। तदुच्यते-यद्यस्मिन् मासि हस्तद्वय-संभवे पूर्वस्मिन् हस्ते कुर्युः। नात्र पूर्वाह्णनियमः। प्रौष्ठपदीमिति सप्तम्यर्थे द्वितीया, तस्याः कृत्स्नसंयोगार्थत्वात्। 'अर्धपञ्चमान्मासानधीत्य पौषीमुत्सर्गः' इति वचनात्। पूर्वपक्षसम्भवाच्च पूर्वहस्तस्य। प्रौष्ठपद्याः पौर्णमास्यास्सन्निकृष्टत्वाच्च पूर्वस्मिन् हस्त इति। पञ्चगव्यमपामार्ग चूर्णितं दूर्वास्तैलमामलकसुपिष्टं हरिद्राकल्कं तिलाक्षतान् पत्राणि पुष्पाणि फलानि मूलानि वन्यानि धूपं दीपं गन्धमग्निं यज्ञोपवीतं दर्भांश्चादाय नदीं गत्वा तदलाभे यथालाभं महोदकं शुद्धजलं तटाकं गत्वा शिष्यैस्सह हर्षमाणो नाभिमात्रे सकृत्प्रगाह्याप आचम्य पञ्चगव्यं प्राश्याचम्य त्रिरेवं प्रगाह्य नैत्यं कर्म समाप्य उत्सर्जनकर्म करिष्य इति संकल्प्य तीर्थं प्रक्षाल्यार्कपत्रेपूदगग्रेषु दर्भेषु वसिष्ठादीनां सप्तर्षीणां एकां पङ्क्तिं पांसुपिण्डैः प्रकल्प्य तथैव राणायनादीनाचार्यांस्त्रयोदश शाट्यादीन् प्रवचनकर्तॄंश्च दश पङ्क्तिद्वयं प्रकल्प्य गङ्गादिपु नदीपु वसन्तीनां देवतानां नवानामेकां पङ्क्तिं प्रकल्प्य ब्रह्माणं वायुं मृत्युं वैश्रवणं काश्यपमग्निमिन्द्रं प्रजापतिं चैकां पङ्क्तिं वंशानुसारेण प्रकल्प्य साध्यानां मरुतां विश्वेषां देवानामष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च त्रयस्त्रिंशा इत्येषां चतुर्णां गणानामर्थे प्रतिगणमेकां

पङ्क्तिं प्रकल्प्य मध्ययोः पङ्क्त्योः दक्षिणतो दक्षिणाग्रेषु दक्षिणापवर्गं त्रीन् पितॄनेकां पङ्क्तिं प्रकल्प्य सर्वान् वसिष्ठादीनत्रावाह्य सन्निहितान् ध्यात्वा तेभ्यः स्वेषु स्वेषु पत्रेषु पवित्रमासनार्थं निधायाभ्यञ्जनार्थं तैलं प्रदाय शरीरपरिमार्जनार्थमपामार्गपिष्टं दत्वा केशप्रक्षालनार्थमामलकं दत्वा 'आपो हिष्ठा, तरत्समन्दी, यः पावमानीः, शुद्धवत्यः, सोमं राजानं, यत इन्द्र, ब्रह्म जज्ञानं, पवित्रं ते' इत्यृग्भिस्सामभिश्च स्नापनं कृत्वाऽऽचमनार्थमुदकं दत्वा वस्त्रं प्रदाय पुनराचमनं दत्वा यज्ञोपवीतं दत्वा हरिद्राकल्कं मङ्गलार्थं दत्वा अक्षतपुष्पभिश्रमुदकमर्घ्यं दत्वा पितृभ्यस्तु तिलमिश्रमुदकं दद्युः 'गन्धद्वाराम्' इति गन्धं, 'ईडिष्व' इति इति धूपं, 'पवमानः' इति दीपं, 'अर्चत प्रार्चत, अर्चन्ति गायन्ति प्रागायत' इति द्वाभ्यां पुष्पाणि दद्युः। तत आचमनार्थमुदकं दत्वा भोजनार्थं फलानि वन्यानि दद्युः। पुनश्चोदकं ततो दर्भाक्षतान् पत्रेषु कृत्वा देवान् 'यथापूर्वम्' इत्यादि वंशं च ब्रुवन्तः स्वैः स्वैस्तीर्थैरमुष्मा अमुष्मा इदमुदकं तृप्त्येऽस्त्विति ध्यायन्तस्तर्पयेयुः प्रतिनाम। पितॄणामक्षतस्थाने तिलाः। पित्र्यं सर्वं प्राचीनावीतिनः कुर्युः। देवर्षीणां सर्वं कृत्वा पश्चात्तर्पणं कर्तव्यम्। दैवं सर्वं प्राचीनावीतिनः। ततो देवर्षिपितॄणामुद्वासनं कृत्वा तानालोड्याऽवभृथसाम गायन्तः पांसुभिरात्मानमभ्युद्धयापोऽभ्यवेयुः। एतदुत्सर्जनं नाम। ततो गृहं गत्वा यथाविभवमलंकुर्युः। अथाचार्यः उपाकर्म करिष्य इति संकल्प्य कृत्स्नेऽग्नौ ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा सप्त कूर्चान् सप्तर्षीन् संकल्प्य उदकपूर्णे कुम्भे सादयेत्। चतुरो वेदानेके सादयन्ति। ततस्सर्वे स्नानाद्यर्चनपर्यन्तं पूर्ववत् कुर्युः॥ अथ प्रकृतमनुसरामः—

भा०—भाद्रमास के जिस किसी तिथि के पूर्वाह्न में हस्त नक्षत्र युक्त हो उसी दिन उपाकरण कर्म करे॥ १४॥

श्रावणीमित्येके॥ १५॥

श्रावण्यां पौर्णमास्याम्॥

भा०—कोई कोई आचार्य्य इसको श्रावण की पूर्णमासी को करना कहते है॥ १५॥

हुत्वोपनयनवत् ॥ १६ ॥

स्तरणादि कृत्वा समस्तान्ताभिहामः । नात्र 'अग्ने व्रतपते' इत्यादीनि अर्थलोपात् । शिष्यास्तु सहिता एव भवेयुः । नात्रान्वारम्भः अतत्संस्कारत्वात् । अथ होमसमापनं, ततो यज्ञोपवीतमेखले नवे ग्राह्ये शिष्यैः ॥ तत आह—

सावित्रीमनुवाचयेत् ॥ १७ ॥

वाचयेदिति सिद्धे अन्विति सावित्र्याः पश्चादन्यस्य वाचनार्थम् किं तदनुवाच्यमित्याकांक्षाबलात् 'उपनयनवत्' इत्यस्यापि सूत्रस्य शेष इति ज्ञायते । अतः पच्छोऽर्धर्चशः सर्वामेकैकशो व्याहृतीनामोंकारस्य च वाचनं शिष्याणाम् ॥

भा०—भूः, भुवः, स्वः, इन तीन मंत्रों का पाठ करते हुए तीनों आहुति देवे (वेदाध्ययन का आरम्भ करने के लिये समुपस्थित नये छात्रों को उपनयन में उपदेश होने की नाईं पहिले पाद २ फिर आधी ऋचा और अन्त में समस्त ऋक् आवृत्ति क्रम से सावित्री मंत्र का अभ्यास करावे ॥ १६ । १७ ॥

सोमं राजानं पर्वादींश्च ॥ १८ ॥

'सोमं राजानम्' इति ऋक्च साम च नियमतो यत्राध्येतारो निरुच्छ्वासमुक्त्वा विरमन्ति चिरकालं तावदेकं पर्व । अग्न आयाहि, तद्वो गाय, उच्चा ते, इन्द्र ज्येष्ठम्, उपास्मै' इत्येकैकामृचं वाचयेत् । 'ओ ग्ना इ' तद्वौ हो वा, उच्चा' इत्येकैकं साम । यद्याकप्राणवाचोत्रतशुक्रियाद्यशकरीसामानि पञ्च । ऊहे सप्त स्तोत्रीयाः । तथा रहस्ये ब्राह्मणे पर्वाण्यानि पञ्च वाक्यानि यावदेकार्थता । षड्विंशे सामविधावार्षेये देवताध्याये चाद्यानि वाक्यानि । 'देव सवितरोम्' इत्येतत्, 'असौ वा आदित्यः, यो ह वै ज्येष्ठम्' इत्युपनिषदि । संहितोपनिषदि वंशे चाद्ये वाक्ये । चकारात्तदङ्गानि लक्षणानि यथाधिगमः ॥

भा०—"सोमꣳराजानं०" ऋक् और ऋक मूलक साम इस प्रकार क्रम से अभ्यास करावे ॥ १८ ॥

अष्टकाममावास्यायां चातुर्मासीष्दगयने च पक्षिणीं रात्रीम् ॥ २८ ॥

माघमासे कृष्णाष्टम्यष्टका । चतुर्षु मासेषु भवाः पौर्णमास्यः चातुर्मास्याः । वर्षासु शरत्सु च याः । चकाराद्दक्षिणायने च । अष्टकायाममावास्यायां चातुर्मासीष्वेकमहोरात्रमुत्तरं चाहरनध्यायः । अयनयोस्तु दिवा चेत् संक्रमणमहरुभयतश्च रात्रिरनध्यायः । रात्रौ चेत्सा रात्रिरुभयतश्चाहनी । अत्र रात्रिग्रहणमष्टकादिषु पूर्वरात्रिवर्जनार्थम् । केचिद्दिवा संक्रमणेऽपि यद्रात्रिसन्निधौ संक्रमणं तामुभयतोऽहस्सहितामाहुः । रात्रिग्रहणात् ॥ २८ ॥

भा०—अष्टका श्राद्ध, अमावस्या, चारों महीनों की पूर्णमासी और दक्षिणायन में भी एक अहोरात्र और एक दिन अनध्याय रहेगा।

सब्रह्मचारिणि च प्रेते ॥ २९ ॥

स्वाचार्येणोपनीते मृते तत्प्रभृति कालत्रयमनध्यायः । चकारान्मातुलादिषु च ॥

भा०—और साथ पढ़ने वाले ब्रह्मचारी के मरने पर भी एक पक्षिणी काल अनध्याय रहेगा ॥ २६ ॥

उल्कापाते भूमिचले ज्योतिषोश्चोपसर्ग एतेष्वाकालिकं विद्यात् ॥ ३० ॥

ज्योतिषोस्सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणे । चकारादव्यक्तेषु निमित्तेषु विद्यादिति स्मृत्यन्तरोक्तसंग्रहणार्थः ॥

भा०—उल्कापात, भूकम्प और सूर्य्य और चन्द्र ग्रहण के पर दिवसीय उसी समय तक अनध्याय होगा ॥ ३० ॥

कार्ष्णं तु कठकौथुमाः ॥ ३१ ॥

श्वभ्रेषु यावति वर्षे उदकं तिष्ठति तावति वर्षे सन्ध्यायां सति कठाः कौथुमाश्चानध्यायमाहुः, न वर्षमात्रे ॥ ३१ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ तृतीय पटलस्य
द्वितीयः खण्डः ॥ ३ ॥ २ ॥

भा०—कठ और कौथुमी शाखा वाले जब तक गड्हे में मेघ का पानी रहेगा तब तक अनध्याय मानते हैं ॥ ३१ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के तीसरे पटल के दूसरे खण्ड
का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ३ । २ ॥

आश्वयुज्यां रुद्राय पायसः ॥ १ ॥

आश्वयुज्यां पौर्णमास्यां 'रुद्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । चरुतन्त्रमेतत् ॥

भा०—आश्विन की पूर्णमासी को पृषातक (घी मिला दूध) इकट्ठा कर रुद्र देवता की प्रसन्नता के लिये पायस चरु पाक करे ॥ १ ॥

मा नस्तोक इति जुहुयात् ॥ २ ॥

प्रधानाहुतिम् ॥

भा०—और "मानस्तोक०" मंत्र से उस चरु की आहुति देवे ॥ २ ॥

पयस्यवनयेदाज्यं तत्पृषातकम् ॥ ३ ॥

समाप्य होममवनयेत् । आज्यसंयुक्तस्य पयसः पृषातकमिति नाम ॥

भा०—आज्य मिले हुए घी को पृषातक कहते हैं ॥ ३ ॥

तेनाभ्यागता गा उक्षेदा नो मित्रावरुणेति ॥ ४ ॥

सायमागताः ॥

भा०—सायंकाल में आई हुई गौ को "आनो मित्रा वरुणाह" मंत्र पढ़कर सींचे ॥ ४ ॥

वत्सांश्च मातृभिस्सह वासयेत् तां रात्रिम् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् ॥

भा०—और उस रात में बछरों के साथ गौ को रहने दे ॥ ५ ॥

नवयज्ञे पायस ऐन्द्राग्नः ॥ ६ ॥

तत्कालपक्वैस्सस्यैस्साध्यो यज्ञो नवयज्ञः । अनिष्ट्वा तु नवैर्न भोक्तव्यम् । शाकादीनां न प्रतिषेधः । शाखान्तरात् कालद्रव्यावगतिः— शरदि पौर्णमास्याममावास्यायां वा व्रीहिभिः । वसन्ते यवैः । 'इन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । 'इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा' इति प्रधानाहुतिः । चरुतन्त्रमेतत् ॥

भा०—नये अन्न से जो यज्ञ किया जाता है उसको नवयज्ञ

कहते हैं। नवयज्ञ में पायस चरु तय्यार कर "इन्द्राग्नीभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि०" मंत्र से आहुति देवे ॥ ६ ॥

शतायुधायेति चतसृभिराज्यं जुहुयादुपरिष्टात् ॥ ७ ॥

प्रधानाहुतेरुपरिष्टात् ॥

भा०—अब नवान्नेष्टि की मुख्य यह ऐन्द्राग्न आहुति देने पर "शतायुधाय०" इत्यादि चार मंत्रों से आज्याहुति द्वारा और भी चार होम करे ॥ ७ ॥

अग्निः प्राश्नात्विति च ॥ ८ ॥

अनेनाप्याज्यं जुहुयात् । अथ स्विष्टकृदादि ॥

भा०—"अग्निः प्राश्नातु०" मंत्र से एक आहुति देवे ॥ ८ ॥

तस्य शेषं प्राश्नीयुर्यावन्त उपेताः ॥ ९ ॥

यज्ञवास्त्वनन्तरस्य पायसस्य । उपेता उपनीताः,स्वभृत्यास्वयं च

भा०—होम में की बची हुई शेष हवि यज्ञ देखने को आए हुए परिजन निमन्त्रण से आये हुये लोगों को यथा भाग खबावे ॥ ६ ॥

उपस्तीर्यापो द्विर्नवस्यावद्येत् ॥ १० ॥

भोजनार्थे पात्रे ॥

त्रिर्भृगूणाम् ॥ ११ ॥

पञ्चावत्तिनाम् ॥

अपां चोपरिष्टात् ॥ १२ ॥

अवत्तस्योपरि चापां निधानम् ॥

भा०—होम से बचे हुए चरु पर एक वार जल छिड़क कर दो वार टुकड़े २ करे। और भृगु गोत्र वाले उस चरु को तीन टुकड़े करे। और ऊपर उनके जल छिड़क देवे ॥ १० । ११ । १२ ॥

भद्रान्न इत्यसंखाद्य प्रगिरेत्त्रिस्त्रिः ॥ १३ ॥

पाणिना प्राशनं, मन्त्रस्यापि त्रिरावृत्तिः । नान्तराऽऽचमनम् । अविवक्षितमेकवचनम् ॥

भा०—उसी प्रकार कई वार बटे हुये चरु पर भी एक वार जल

छिड़के। उसके पीछे चरु में से कुछ लेकर "भद्रान्नः" मंत्र पढ़कर स्वाद न लेकर निगल जावे। ऐसा तीन वार मंत्र पढ़ २ कर करे ॥१३॥

एतमु त्यमिति वा यवानाम् ॥ १४ ॥

अयं वा यवानां प्राशनमन्त्रः पूर्वो वा ॥

भा०—और नूतन यव यज्ञ में "एत मुत्यं मधुना०" मंत्र का प्रयोग करे ॥ १४ ॥

अमोसीति मुख्यान् प्राणानभिमृशेत् ॥ १५ ॥

आचम्य चक्षुषी नासिके श्रोत्रे चाभिमृशेत्। अथ शिष्टमुदगुद्वास्य ब्रह्मणे दत्वा दक्षिणां दद्यात् ॥

भा०—उसके पीछे 'अमोसिप्राणं०" मंत्र को पढ़कर ललाट से डाढ़ी तक और ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश और कान की जड़ से पैर तक अच्छे प्रकार धोवे और बाकी को उत्तर ओर छिड़ककर ब्राह्मण को देवे॥१५॥

आग्रहायण कर्म श्रावणेन व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

मार्गशीर्ष्यां पौर्णमास्यां भर्जनादिप्राशनान्तं पूर्वाह्णे कुर्यात् उपवसथ्येऽहनि ॥

भा०—श्रावण मास की पूर्णमासी को बलि हरण विषय में जो २ कहा गया है इस अगहन मास की पूर्णिमा के बलिहरण में भी उन्हीं २ नियमों का पालन करे ॥ १६ ॥

नमः पृथिव्या इति न जपेत् ॥ १७ ॥

मन्त्रत्रयस्य प्रतिषेधः ॥

भा०—श्रावण मास में जो वलि हरण आरम्भ हुआ है। उसमें "नमः पृथिव्यै०" मंत्र का व्यवहार करने की विधि है। इस अगहन मास की वलि हरण में उसकी आवश्यकता नहीं, यही इसमें विशेषता है ॥ १७ ॥

प्रदोषे पायसस्य जुहुयात् प्रथमेति ॥ १८ ॥

तस्मिन्नेव दिने रात्र्यामाद्ये यामे 'हव्यवाहाय त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः। सर्वत्र केवलमन्त्रनिर्देशे तूष्णीं निर्वाप इति केचित्। मन्त्रेण प्रधानाहुतिः। चरुतन्त्रमेतत् ॥

भा०—प्रदोप समय (रात का आरम्भ) समन्न्यायन्ति०" मंत्र को पढ़ते हुये "पायस चरु" को पकावे ॥ १८ ॥

न्यञ्चौ पाणी कृत्वा प्रतिक्षत्र इति जपेत् ॥ १९ ॥

होमं समाप्य जपेत् भूमिगताववाञ्चौ पाणी कृत्वा ॥

भा०—अग्नि के पश्चात् भाग में कुश के ऊपर दोनों हाथ नीचे रक्खकर "प्रतिक्षत्रे०" आदि तीन व्याहृति मंत्रों का जप करे ॥ १६ ॥

पश्चादग्नेः स्वस्तरमुदगग्रैस्तृणैरुदक्प्रवणमास्तीर्य तस्मिन्नास्तरणे गृहपतिरास्ते ॥ २० ॥

स्वस्तरमिति कर्मनाम ॥

अनुपूर्वमितरे ॥ २१ ॥

सर्वे भृत्याः क्रमेणोत्तरतः स्वस्तर एवासते ॥

भा०—इसके पश्चात् अग्नि के पश्चिम उत्तराग्र आदि कुशासन पर बैठने के लिये आसन बनवाने में यत्नवान् होवे । यह स्थान उत्तर दिशा में गहरा होगा । उसके ऊपर अच्छिन्न (टूटा नहीं) आस्तरण आदि बिछाकर सब से दक्षिण ओर घर का मालिक बैठे । उसके बायें क्रम से ज्येष्ठ अनुसार भाई आदि बैठे । अर्थात् मालिक बाँयी ओर प्रथम बड़े बैठे उसके पश्चात् छोटे इसी क्रम से और भी बैठें ॥२०-२१॥

अनन्तरा भार्या पुत्राश्च ॥ २२ ॥

भार्याऽनन्तरं पुत्राः चकारात् पुत्रानन्तरमितरे ॥

भा०—और उसके पश्चात् अपने वर्ण की भार्य्या आदि भी उक्त प्रकार बड़े छोटे क्रम से बैठे ॥ २२ ॥

न्यञ्चौ पाणी कृत्वा स्योनेति गृहपतिर्जपेत् ॥ २३ ॥

भूमिगतौ कृत्वा ॥

भा०—सब के ठीक २ बैठ जाने पर घर का मालिक स्वस्त्ययन प्रारम्भ करे । और दोनों हाथों को नीचे कर "स्योनापृथिविनोभवा०" मंत्र को पढ़े ॥ २३ ॥

सपातायां दक्षिणैः पार्श्वैस्संविशेयुस्त्रिस्त्रिरभ्यात्ममावृत्य ॥२४

'स्योना' इत्यृचि समाप्तायां प्राक्शिरसस्संविशेयुः ॥

स्वस्त्ययनानि कुर्युः ॥ २५ ॥

आशीर्वचनानि ॥

ततो यथार्थं स्यात् ॥ २६ ॥

तत एव यथार्थं न पूर्वमिति। 'आग्रहायणम्' इत्यारभ्य एक एवासौ प्रयोग इत्यर्थः ॥

भा०—पाठ समाप्त होने पर सब को प्रदक्षिणा कर अग्नि और परिजन इनके बीच होकर अपनी जगह आ बैठे। इसी प्रकार तीन वार प्रदक्षिणा कर "वामदेव्यादि" "स्वस्त्ययन" साम गान के अन्त में पूर्वोक्त रीति से क्रियाशेष करे। और क्रिया की समाप्ति पर आचमन कर जहां चाहे जावे या अपने प्रयोजनानुसार कार्य करे ॥ २४। २५। २६ ॥

ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तिस्रस्तामिस्राष्टम्योऽष्टका इत्याचक्षते ॥

अपरपक्षाष्टम्यः ॥

भा०—अग्रहण मास की पूर्णिमा के पीछे कृष्णपक्ष की तीन अष्टमी को तीन अष्टकायें होती हैं इनको आचार्य्य लोग अपूपाष्टक कहते हैं अर्थात ये अष्टकायें पूआ द्वारा की जाती हैं ॥ २७ ॥

तासु स्थालीपाकाः ॥ २८ ॥

एकस्यामेकः ॥

भा०—इसके पहिले स्थालीपाक प्रकरण में जिस प्रकार कहा गया हैं उसी प्रकार तण्डुल आदि से चरु पाक करे ॥ २८ ॥

अष्टौ चापूपाः प्रथमायाम् ॥ २९ ॥

स्पष्टम् ॥

भा०—और मट्टी की एक बड़ी कराही में आठ पूआ पकावे। पुआ को इस भांति बनावे जिससे वह टूटे नहीं ॥ २९ ॥

तानपरिवर्तयन् कपाले श्रपयेत् ॥ ३० ॥

'अष्टकायै त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निरुप्य विभज्यार्धं स्थाली-

पाकचरुस्थाल्यां निधायापरं चार्धमष्टावपूपान् कृत्वैकस्मिन् कपाले युगपच्छ्रपयेत् ॥

उत्तमायां शाकमन्वाहार्ये ॥ ३१ ॥

उपदंशार्थं ब्राह्मणभोजने दद्यात्।

भा०—एक ही चरु स्थाली में अलग २ आठ पुआ बनावे और शाक भी बनावे। और पुआ और शाक ब्राह्मण को भोजन करावे ॥ ३०। ३१ ॥

अष्टकायै स्वाहेति जुहुयात् ॥ ३२ ॥

प्रधानाहुतिम्। चरुतन्त्रमेतत्। चरोरपूपेभ्यश्च किञ्चित्किंचिदादाय स्विष्टकृदर्थं संहतमेकैकमवदानम्। उत्तमायां चरुरेव हविः। समानमितरत्। मध्यमायां तु विशेषं वक्ष्यति ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ तृतीयस्य पटलस्य
तृतीयः खण्डः ॥ ३। ३ ॥

भा०—पूर्वोक्त स्थालीपाक के नियम से उस चरु और पूए आदि से कुछ २ अंश काटकर इस काटे अंश को "अष्टकायै स्वाहा" मंत्र से अग्नि में डाले ॥ ३२ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के तीसरे पटल के तीसरे खण्ड
का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ३। ३ ॥

मध्यमायां गौः ॥ १ ॥

स्थालीपाकेन समुच्चयः। चरुश्रपणवर्जमाज्यसंस्कारान्तं कुर्यात् ॥ तत आह—

भा०—पौष मास की पूर्णिमा के पीछे अष्टमी तिथिको गोमांस द्वारा मांसाष्टका करे ॥ १ ॥

तां पुरस्तादग्नेः प्रत्यङ्मुखीमवस्थाप्य जुहुयाद्यत्पशव इति ॥ २ ॥

स्पष्टम् ॥

भा०—सन्धि वेला (रात और दिन का संयोग समय) के कुछ पहिले अग्नि के पूर्व भाग में उस गौ को लाकर रक्खे। पीछे सन्धि

बेला होने पर "यत्पशव प्रध्यायत०" मंत्र से घी की आहुति देवे और कार्य का आरम्भ करे ॥ २ ॥

हुत्वा चानुमन्त्रयेतानु त्वेति ॥ ३ ॥

व्याहृतिभिश्च हुत्वा पशुमनुमन्त्रयेत ॥

भा०—और कार्य्य के आरम्भ सूचक पूर्वोक्त आहुति देने पर इस समय यव मिला जल, पवित्र, क्षुर, शाखा, विशाखा, बर्हिः, इध्म आज्य, दो समिधा, और स्रुव ये सब भी आवश्यकतानुसार अपने पास ठीक रक्खे। "अनुत्वा०" मंत्र पढ़ते हुए गौ को मारने के लिये निमन्त्रण देवे ॥ ३ ॥

यवमतीभिरद्भिः प्रोक्षेदष्टकायै त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति ॥४॥

स्पष्टम् ॥

भा०—"अष्टका देवता की प्रीति के लिये प्रीति पूर्वक सेवनीय तुम्हें धोता हूँ०" मंत्र पढ़कर उस बध्य गौ को यव से भीगे जल से धोवे ॥ ४ ॥

प्रोक्ष्योल्मुकेन परिहृत्य प्रोक्षणीः पाययेत् ॥ ५ ॥

तूष्णीं प्रोक्ष्य गृह्याग्नेरुल्मुकेन पशुं प्रदक्षिणं परिवार्य प्रोक्षणीशेषं पाययेत्पशुम्। उल्मुकमग्नावतिसृजेत् ॥

भा०—"परिवाजपति०" मंत्र को पढ़कर एक मुट्ठी खर जला कर जलते खर से उस गौ की प्रदक्षिणा करे। और गौ को एक पात्र में जल पीने को देवे ॥ ५ ॥

उदङ्ङुत्सृप्य प्रत्यक्शिरसीमुदक्पादीं संज्ञपयेत् ॥

शमिता ॥

भा०—अनन्तर शमिता उस गौ को अग्नि के उत्तर लाकर काट डाले। यदि देव कर्म के लिये गौ मारी जावे तो पशु का मस्तक पूर्व दिशा में रक्खे और चारों पैर उत्तर की ओर रक्खे। और यदि पितृ कार्य के लिये गौवध हो तो पशु का मस्तक दक्षिण दिशा में और उसके पैर सब पश्चिम दिशा की ओर रक्खे ॥ ६ ॥

संज्ञप्तायां जुहुयाद्यत्पशुरिति ॥ ७ ॥

गृहपतिः ॥

भा०—गौ मारे जाने पर घर का मालिक "यत पशु०" मंत्र को पढ़कर आज्य से होम करे ॥ ७ ॥

तस्याः पत्नी स्रोतांसि प्रक्षालयेत् ॥ ८ ॥

तस्याः स्रोतांसि चक्षुश्श्रोत्रनासास्यपायूपस्थानि पत्नी प्रक्षालयेत्।

भा०—और उस समय यजमान की स्त्री जल से उस कटे हुये शिर वाली गौ के नेत्र आदि इन्द्रिय आदि को अच्छे प्रकार धोवे। जैसे माथे में, नेत्रादि सात, चार स्तन, नाभि, कमर, गुह्य देश ये १४ स्थान हैं ॥ ८ ॥

पवित्रे अन्तर्धायोत्कृत्य वपामुद्धारयेत् ॥ ९ ॥

शमिता ॥

भा०—तब शमिता नाभि के पास पवित्रद्वय से छिपाकर लोमानुसरण क्रम से छुर के नीचे की ओर जाने वाली चालन से काट कर उसमें से वपा को निकाले ॥ ९ ॥

यज्ञियस्य वृक्षस्य विशाखाशाखाभ्यां परिगृह्याग्नौ श्रपयेत् ॥ १० ॥

गृहपतिः ॥

भा०—और निकाली हुई वपा को मालिक शाखा, विशाखा, नामक पलाश की लकड़ी का बना हुआ ढक्कन के आधार पर रख के जल से सामान्य रूप से धोकर अग्नि में सिद्ध करे ॥ १० ॥

प्रसृतायां विशसेत् ॥ ११ ॥

यदा श्रवणाद्वपायाः प्रस्रवेद्धारि तस्मिन् काले शमिता पशुं विशसेत् ॥

भा०—इधर उस गौ के नाभि के पास से काटकर मेद निकाल इस गौ के चमड़ा निकालने की आज्ञा करे ॥ ११ ॥

उक्तमुपस्तरणाभिघारणं यथा स्विष्टकृतः ॥ १२ ॥

स्पष्टम ॥ 'सकृदुपस्तीर्य' इत्यादि यथोक्तं तथाऽत्रापि हविस्स्थाने कृत्स्नां वपाम् ॥

अष्टकायै स्वाहेति जुहुयात् ॥ १३ ॥

स्पष्टम् ॥

भा०—अनन्तर उस अग्नि में पकी वपा जो ठंड के कारण जम जायगी उसको "स्थालीपाक" की रीति से या स्विष्टकृत् की रीति से चाकू से काटकर उसमें से लेकर "अष्टकायै स्वाहा०" मंत्र से होम करे ॥ १२ । १३ ॥

सर्वाङ्गेभ्योऽवदानान्युद्धारयेत् ॥ १४ ॥

हृदयजिह्वावक्षोयकृद्वृक्यद्वितयसव्यबाहुपार्श्वद्वयदक्षिणश्रोणि-गुदेभ्य एकादशाङ्गेभ्य आहुतिमात्रमुद्धारयेच्छमिता ॥

न सव्यात्सक्थ्नः ॥ न क्लोम्नः ॥ १५-१६ ॥

पूर्वस्यान्वष्टक्यार्थत्वादुत्तरस्याहव्यत्वात् ॥

सव्यं सक्थि निधाय ॥ १७ ॥

अन्वष्टक्यार्थम् ॥

भा०—वाम सक्थि (ऊरु) और क्लोम (पित्त कोष) को छोड़कर सब अङ्गों से खण्ड २ करके मांस ग्रहण करे । वाम सक्थि समस्त ही अन्वष्टका कार्य्य में व्यवहार के लिये रक्खे ॥१४।१५ १६।१७॥

पृथङ् मेक्षणाभ्यामवदानानि स्थालीपाकं च श्रपयित्वा ॥

अवदानानां कुम्भ्यां श्रपणं, चरोस्तूष्णीं निर्वापः, श्रपयित्वाऽव-दानानि स्थालीपाकं चाभिघार्योदगुद्वास्य प्रत्यभिघार्य बर्हिषि कंसं सप्त-शाखाश्चैकादश सादयेत् ॥ तत आह—

भा०—उसी एक अग्नि में "ओदन चरु" और मांस चरु ये दोनों चरु पकावे । परन्तु दोनों चरु में भिन्न २ चलौने से चलावे एक ही से नहीं । इन दोनों चरुओं के अच्छे प्रकार पक जाने पर घी का ढार दे अग्नि के ऊपर भाग में उतार लेवे और पुनः उसमें घी का ढार देवे ॥ १८ ॥

कंसे रसं प्रस्राव्य ॥ १९ ॥

अवदानरसम् ॥

प्लक्षशाखास्ववदानानि कृत्वा ॥ २० ॥

हृदयाद्येकादशाङ्गानि निधाय ॥

एकैकस्मात् कंसेऽवद्येत् ॥ २१ ॥

कंसस्थे रसे प्रत्येकं मध्यात्पुरस्ताच्च ॥

स्थालीपाकाच्च ॥ २२ ॥

स्पष्टम् ॥ अथ परिषेकाद्याज्यभागान्तम्। ननु 'हुत्वा चानुमन्त्रयेत' इति व्याहृतिहोमानां विद्यमानत्वादत्राज्यभागौ न स्तः। अन्यविषयत्वात्, प्रपदानन्तरं यत्र व्याहृतिहोमस्तत्र तयोः प्रतिषेधः ॥ तत आह—

भा०—मांस के यूष को एक कांसे के वर्तन में ढार रक्खे और मांस आदिक को एक पत्थर की कुण्डी (जिसका ढक्कन पाकर शाखा निर्मित हो) में रक्खे और पुनः उस भाग में से थोड़ा स्थालीपाक के नियम से काट लेवे और उसको स्विष्टकृत् भागार्थ दूसरे कांसे के वर्तन में रक्ख छोड़े। ओदन की हाँडी से वेल की बराबर चरु लेकर (पत्थर की कुण्डी में रक्खा) मांस खण्ड के साथ (काँसे के पात्र में रक्खे हुये) यूष को मिलावे। अर्थात् उस यूष के पात्र में यूष के बीच में रक्खे ॥ १६। २०। २१। २२ ॥

चतुर्गृहीमष्टगृहीतं वाऽत्र जुहुयादग्नाविति ॥ २३ ॥

द्वाविंशतिः पश्ववदानानि, तेषां चत्वार्यष्टौ वा चर्ववदानमिश्राणि गृहीत्वा जुहुयात्। अत्रेत्युपस्तरणाभिघारणप्रतिषेधार्थं, अत्रैव गृहीत्वा जुहुयान्नान्यत इति ॥

भा०—पूर्वोक्त रीति से चार वार ग्रहण किया हुआ आज्य लेकर "अग्नावग्निः०" इत्यादि मंत्रों में से "अग्नावग्निः०" मंत्र पढ़कर हवन करे ॥ २३ ॥

कंसात्पराभिर्द्वाभ्यांद्वाभ्यामेकैकामाहुतिम् ॥ २४ ॥

कंसादेव गृहीत्वा पराभि ऋग्भिः 'औलूखलाः' इत्यादिभिष्षड्भिर्द्वाभ्यामेकैकामाहुतिं द्वाभ्यां पश्ववदानाभ्यां चर्ववदानमिश्राभ्यां जुहुयात् ॥

सौविष्टकृतीमष्टम्या ॥ २५ ॥

कंसे यच्छिष्टं तेन 'अग्नियं नः' इति स्विष्टकृत्स्थानापन्नं जुहुयात् । अतो न स्विष्टकृदन्तरम् । अथोपरिष्टाद्धोमादि ॥

भा०—पूर्वोक्त बिल्व की बराबर जो ओदन चरु मांस के साथ मिलाकर यूष में रक्खा गया है। उसमें से एक तिहाई लेकर दूसरे और तीसरे मंत्रों से एक आहुति देवे उसके तीसरी आहुति के अन्त में "स्वाहा" शब्द का प्रयोग करे। अपर दो तिहाई भी चौथे और पञ्चम मंत्रों से एवं छठे और सातवें मंत्र से इसी नियम से अर्थात् शेष मंत्र के अन्त में "स्वाहा०" जोड़कर यथाक्रम दो आहुति देवे। सबके अन्त में आठवां मंत्र पढ़कर स्विष्टकृत् याग के लिये (अलग कांसे के पात्र में रखा) मांस खण्ड आदि होम करे ॥ २४ । २५ ॥

वह वपामिति पित्र्ये वपाहोमः ॥ २६ ॥

पितृदैवत्ये कर्मणि ॥

जातवेद इति दैवत्ये ॥ २७ ॥

वपाहोमः ॥

तदादेशमनाज्ञाते ॥ २८ ॥

अनिर्दिष्टोभयभावे कर्मनाम्नैव ॥

यथाऽष्टकाया इति ॥ २९ ॥

अत्रैवाभिहितम् ॥

पशुरेव पशोर्दक्षिणा ॥ ३० ॥

एवकार उपालब्धतुल्यार्थः ॥

स्थालीपाकस्य पूर्णपात्रम् ॥ ३१ ॥

यथोत्साहनिवृत्त्यर्थम् । चरुतन्त्रप्रकृतिरयं होमः ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ तृतीयस्य पटलस्य

चतुर्थः खण्डः ॥ ३ । ४ ॥

भा०—जिस स्थान में पितृगण के लिये पशु हनन करे, उस स्थान में "वह वपां०" इत्यादि मंत्र से वपा होम करे और जहां किन्हीं देवता के लिये पशु हनन किया जाय, वहां "जातवेदो वपया०"

इत्यादि मंत्र से वपा होम करे। जहां कर्तव्य कार्य के देवता के निश्चय में सन्देह हो (कि यहां कौन देवता होनी चाहिये) ऐसे स्थान के लिये विशेष मंत्र कहा जाता है। ऐसे स्थानों में जो मंत्र कहा जावे, उसी मंत्र से वपा होम करे। जिस प्रकार अष्टका कार्य में "अष्टकायै स्वाहा०" मंत्र से वपा होम में आहुति होगी। अन्य कार्य सब स्थाली पाक के नियम से होंगे। पशुयाग में दक्षिणा पशु ही दिया जायेगा, और स्थालीपाक में पूर्ण पात्र दक्षिणा में दिया जायेगा॥ २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के तीसरे पटल के चौथे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ॥ ३। ४॥

नवमीं दशमीं वाऽन्वष्टक्यम्॥ १॥

द्वितीयाऽत्यन्तसंयोगार्था। पूर्वाह्णव्यतिरेकार्था। तेनानादृते च पूर्वाह्णे पित्र्यत्वादपराह्णनियमः। पित्र्यत्वं च पिण्डप्रदानप्रधानत्वात्। प्राचीनावीती कुर्यात्। अत्रापि होमे तदङ्गेषु च यज्ञोपवीत्येव। मध्यन्दिनादूर्ध्वमपराह्णः अहः पञ्चधा विभज्य चतुर्थो वा भागः अह्नस्तृतीयो वा भाग इति केचित्। अष्टकामनु क्रियत इत्यन्वष्टक्यं कर्म, एतच्च प्रत्यष्टकमनन्तरं कर्तव्यम्॥

भा०—अष्टका कार्य के दूसरे दिन या उसके तीसरे दिन "अन्वष्टका" कार्य करे॥ १॥

दक्षिणपूर्वे भागे परिवार्य तत्रोत्तरार्धे मथित्वाऽग्निं प्रणयेत्॥ २

गृहस्य दक्षिणपूर्वभागे, गृह्याग्नेरिति केचित्। प्रोक्षणान्तं कृत्वा प्रणयेत् निदध्यादित्यर्थः। अस्य श्रपणार्थत्वात् प्राचीनावीती॥

भा०—रहने के घर से अग्नि कोण में अष्टम भाग स्थान छेक कर दक्षिण पूर्व दिशा में विस्तृत इस अग्नि कोणाभिमुख रक्खा द्रव्यादि से कार्य सिद्ध करने के लिये रुकावट न हो ऐसा उत्तम एक मण्डप

बनावे। इसके उत्तरार्द्ध में अरणि द्वारा अग्नि उत्पन्न कर नूतन अग्नि का आधान करे॥ २॥

सकृद्गृहीतान् व्रीहीन् सकृत् फलीकृतान् प्रसव्यमुदायुवं श्रपयेत्॥ ३॥

सकृद्गृहीतान् सकृत्फलीकृतानिति सिद्धवद्व्यपदेशान्न स्वयं कर्तृत्वनियमः। भूतकालनिर्देशाच्च नापराह्णनियमः। सकृदेव तूष्णीं स्थाल्यां निरुप्य सकृत्प्रक्षाल्य मेक्षणेन प्रसव्यमप्रदक्षिणमुदायुवं श्रपयेत् मथितेऽग्नौ गृह्ये वा॥

अमुष्माच्च सक्थ्नो मांसमिति॥ ४॥

अन्वष्टक्यार्थं निहितात् सव्यसक्थ्नो मांसं भोजनार्थवच्छकली-कृत्य स्थाल्यन्तरे मेक्षणान्तरेणोदायुवं श्रपयेत्। इतीति चेदर्थे। सक्थि चोद्यते तदैवम्। प्रथमोत्तमयोस्त्वष्टकयोरन्वष्टक्ये स्थालीपाक एवेत्य-परं मतम्—'अष्टकायै स्वाहेति जुहुयात्' इति तिसृष्वप्यष्टकास्वविशेषण वचनात् मध्यमायामपि पश्वसंभवे केवलस्थालीपाकहोमोऽप्यनुज्ञात एवेति तस्मिन् पक्षेऽन्वष्टक्येऽपि स्थालीपाकश्रपणमेव॥

भा०—अग्नि के पश्चिम भाग में एक ही बार कई एक मुट्ठी धान लेकर दोनों हाथों से मूसल पकड़ कर धान कूटे। पूर्वोक्त प्रकार कूटने से धान्य आदि में जब भूसी न रहे तब उसे सूप से फटक कर उस भूसी आदि को उड़ा देवे। इधर उस पूर्व रक्षित वाम ऊरु से मांस पेशी आदि काटकर नये बर्तन में खण्ड २ कर काटे इस प्रकार खण्ड २ करे जिसमें घी के ढार देने से वह पिण्डाकार बन जाये। एक ही अग्नि पर 'ओदन चरु' और 'मांस चरु' को भिन्न २ रक्खे हुये चलौने से बाईं ओर से चलावे और ऊपर को चलौना से उठा २ कर रखकर देखता हुआ पकावे॥ ३। ४॥

दक्षिणोद्वास्य न प्रत्यभिघारयेत्॥ ५॥

मांसं चरुं च शृतमभिघार्य॥

भा०—इन दोनों चरु के अच्छे प्रकार पक जाने पर घी का

ढार देवे और अग्नि के दक्षिण भाग में उतारे, परन्तु उसमें पूर्ववत् फिर घी का ढार देवे ॥ ५ ॥

पश्चादग्नेर्दक्षिणतस्तिस्रः कर्षूः खन्याच्चतुरङ्गुलमधस्तिर्यक् ॥ ६

पश्चादग्नेरुपविष्ट आत्मनो दक्षिणतो दक्षिणापवर्गाः कर्षूः खन्यात् अपणात् पूर्वमेवस्मिन् देश उपवेशने सिद्धे पश्चादग्नेरिति वचनं वक्ष्यमाणं सर्वमस्मिन्नेव देश उपविश्य कुर्यादित्येवमर्थम् ॥

भा०—उस मण्डप के दक्षिण भाग में तीन गड़हा खुदवावे। इन गड़हों की लम्बाई प्रादेशमात्र, चौथाई अंगुल और चार ही अंगुल गहराई भी होगी ॥ ६ ॥

तासां पुरस्तादग्निं प्रणयेत् ॥७॥

मध्यमकर्ष्वाः पुरस्तादृजुदेशे द्विपदमात्रं स्वस्तरदेशमतीत्य तत्रोपलेपनादि प्रोक्षणान्तं कृत्वा मथितं सर्वं निदध्यात् यज्ञोपवीती सर्वत्र। यदा वा प्राचीनावीती भूत्वा यज्ञोपवीती भवति तदाऽप उपस्पृशेत् ॥

भा०—पहिले गड़हे के सामने लक्षण (चिन्ह) पूर्वक अग्नि प्रणयन करे और इन दो लक्षणों से अग्नि लावे और उसको गड़हों के निकट दूसरे बगल में रक्खे ॥ ७ ॥

स्तृणुयात् ॥ ८ ॥

स्तरणान्तं यज्ञोपवीती कुर्यात्। नात्र ब्रह्मा। अत्र पश्चात् स्तरणपक्षः ॥

कर्षूश्च ॥ ९ ॥

कर्षूणामुपरि दक्षिणाग्नेः प्राचीनीवीती छादयेत् न प्रतिकर्षु दर्भभेदः ॥

भा०—कुछ जड़ काटी हुई कुश मुट्ठी एक ही वार में अग्नि के चारों ओर बिछा देवे और पूर्वादि क्रम से उस गड़हे में भी वही कुश मुट्ठी बिछावे ॥ ८ ॥ ९ ॥

पश्चादग्नेः स्वस्तरं दक्षिणाग्रैः स्तृणैर्दक्षिणाप्रवणमास्तीर्य बसीमुपनिदध्यात् ॥१०॥

स्वस्तरमिति कर्मनाम। वृसी कूर्मफलकं, कटमिति केचित् स्वस्तरोपरि निधानम्॥

भा०-इन तीनों गड्हों के पश्चिम भाग में दक्षिणाग्र कई एक कुश से दक्षिणा प्रवण स्वरूप स्वस्तर बिछावे और उसी स्थान में वृसी नाम काठ का आसन रक्खे॥ १०॥

तस्मिन्नेकैकमाहरेत्॥ ११॥

तस्मिन् वृसीसंज्ञके उदकपूर्णानि त्रीणि पात्राणि तिस्रो दर्भपिञ्जूलीश्चरुमञ्जनं तैलं गन्धं सूत्रतन्तूंश्चैकैकशः क्रमशो निदध्यात्। एतान्येव प्राचीनवीती दर्भोपवेशनादि प्रपदान्तं कुर्यात्। बर्हिषि सादनकाले कंसं च सादयेत्॥

भा०-उस वृषी नामक काष्ठासन पर जल से भरे हुये जलपात्र तीन, कुश की ३ पिञ्जुली, चरु, अञ्जन तेल, गन्ध, सूत्र, को एक २ कर रक्खे। इन सबको प्राचीनावीती करके और फिर यज्ञोपवीती होकर दर्भोपवेशनादि से लेकर प्रपद तक की सारी क्रियाओं को करे जब बर्हि कुश को रक्खे उस समय कांसे के पात्र को भी रक्खे॥११॥

कंसे समवदाय मेक्षणेनोपघातं जुहुयात् स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहाऽग्नये कव्यवाहनायेति॥ १२॥

चरुं मांसं च सहावादाय। यदि मांसं विद्यते मेक्षणेन। स्रुवजुह्वोर्निवृत्तिः प्रधानहोमयोः। नात्रोपस्तरणाभिघारणे। उपघातशब्दः पूर्वव्याहृतिहोमार्थः। अत एव नाज्यभागस्विष्टकृतः। कृत्स्नमन्त्रोच्चारणमन्ते स्वाहाकारनिवृत्तये। अथ गानान्तं समापयेत्। अथ ऊर्ध्वं प्राचीनावीती॥

भा०-जब तीनों ऋत्विग् गण एक वाक्य से 'करो' ऐसा कहें इस पर यजमान कांसे के वर्तन में मांस चरु और ओदन चरुको एकत्र लेकर, उसमें से थोड़ा सा दर्वी द्वारा लेकर उपघात होम करे। उनमें से "स्वाहा सोमाय पितृमते०" मन्त्र से पहिली आहुति देवे। और "स्वाहाग्नये कव्यवाहनाय०" मन्त्र से दूसरी आहुति देवे॥ १२॥

सव्येनोल्मुकं दक्षिणतः कर्षूषु निदध्यादपहता इति।१३।

सव्येन हस्तेन कर्षूः प्रज्वाल्य तासां दक्षिणतो निदध्यादुल्मुकं यथाऽऽसमाप्तेर्नानुगच्छेत् । 'अस्मात्' इति मन्त्रान्तः ॥

भा०—वाम हाथ में जलती आग लेकर दहिने हाथ में रख उस कर्षू आदि के बीच में रेखापात के अगले भाग में 'ये रूपाणि०" इत्यादि मन्त्र से स्थापन करे। और वाँयें हाथ में स्वस्तर से एक दर्भ पिञ्जुली लेकर दहिने हाथमें लेते हुये उसके द्वारा "अपहता असुरा ०" मन्त्र से उन तीन कर्षू से दक्षिण मुंह रेखा करे ॥ १३ ॥

पूर्वस्यां कर्ष्वां पितुः ॥ १४ ॥

प्रथमखातायां वक्ष्यमाणं पित्र्ये यत्कृत्यं तत्कुर्यात् ॥

भा०—वाँयें हाथ से कर्षू के पास रक्खे हुये जल पात्र को लेकर दहिने हाथ की अंगूठे की जड़ से जल ढारकर, उस जल को पिता का नाम लेकर "असौ अवनेनिद्व०" इत्यादि मन्त्र पढ़कर पहिले से रक्खे हुये कर्षू के ऊपर दर्भ में आहूत अपने पिता को प्राप्त कराये। इसीका नाम "निनयन" है ॥ १४ ॥

मध्यमायां पितामहस्योत्तमायां प्रपितामहस्य ॥ १५ ॥

वक्ष्यमाणं सर्वं पितृतीर्थेन दक्षिणापवर्गं क्रमेण पितृपितामह-प्रपितामहानुद्दिश्य दक्षिणेन पाणिना कुर्यात् । 'एत पितरः' इति पित्रादीनावाहयेत्, मन्त्रलिङ्गात् ॥

भा०—पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से भी इसी प्रकार निनयन करे। परन्तु प्रति बार जल से हाथ धो लिया करे। अर्थात् पितृ निनयन के पीछे हाथ धोकर पितामह का निनयन करे फिर हाथ धोकर पितामह के लिये निनयन करे ॥ १५ ॥

उदपात्राण्यपसलवि कर्षूषु निनयेदेकैकस्य नामोक्त्वाऽसाववनेनिङ्क्ष्व ये चात्र त्वाऽनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधेति ।१६

अपसलवि पितृतीर्थेन । प्रदेशिन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा पितृतीर्थम् । "विष्णुशर्मन् पितः अवनेनिङ्क्ष्व" इतिवत् पित्रादीनां निर्देशः । यदि नामानि न विद्यान् तदा पितःपितामह प्रपितामहेत्येव ब्रूयात् । पुत्रिका

पुत्रस्तु मात्रे मातामहाय तत्पित्रे च दद्यात्। अथ वा मातामहाय तत्पित्रे तत्पित्रे च दद्यात्। यदि जनयितुः पुत्रान्तरं न विद्यते द्वौ द्वावेकस्मिन् पिण्डे निर्दिशेत् पुत्रिकापुत्रः, तथा दत्तपुत्रोऽपि जनयितुः पुत्रान्तराभावे। एवमन्योपि यो द्वयोः पुत्रस्स्यात्॥

तथैव पिण्डान्निधाय जपेदत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति॥ १७॥

कंसादृ्हीत्वा। 'अवनेनिङ्क्ष्व' इत्यस्य स्थाने 'भुङ्क्ष्व' इत्यूहः॥

भा०—पूर्व गृहीत कांसे के पात्र में मिला हुआ चरु, दर्वी से काटकर तीन भाग करे और एक २ कर क्रम से (बीच २ में हाथ धो लिया करे) कुश के ऊपर अपने पिता का नाम लेकर "असावेषः पिण्डः०" मंत्र से यथाक्रम तीन पिण्ड दान करे॥ यदि पिता का नाम स्मरण न हो तो पहिला पिण्ड पृथिवी-स्थायी पितृगण के लिये दूसरा पिण्ड अन्तरिक्ष स्थायी पितृगण के निमित्त और तीसरा पिंड द्युलोकस्थ पितृगण के निमित्त उन्हीं कर्षूओं के बीच पूर्वोक्तानुसार स्थापित करे॥ उन्हीं तीन गड़हों में पूर्वोक्त रीति से स्थापन करके यजमान एक स्थान में बैठकर "अत्र पितरः०" यह मंत्र पढ़े॥१६-१७॥

उक्त्वोदङ्ङावर्तेत सव्यं बाहुमुपसंहृत्य प्रसव्यमावृत्य॥१८

व्याहृतिपूर्वां सावित्रीं तस्यां चैव गायत्रं यद्वा 'उ विश्पतिः' इत्यादीनि पित्र्याणि सामान्युक्त्वा सव्यं बाहुमुपसंहृत्य दक्षिणं बाहुं प्रसार्य प्रसव्यमावृत्योदङ्मुखः स्यात्॥ १८॥

भा०—व्याहृति पूर्वक सावित्री को और उस में भी गायत्री मंत्र को या "उ विश्पतिः०" इत्यादि पित्र्य साम मंत्रों को कहकर बाम हाथ को समीट कर और दहिने हाथ को पसार कर गड़हे आदि की परिक्रमा करके उत्तर मुंह बैठे॥ १८॥

उपताम्य कल्याणं ध्यायन्नभिपर्यावर्तमानो जपेत् अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषतेति॥ १९॥

यथाशक्ति निरुच्छ्वास आसीन उच्छ्वास्य यदात्मनोऽभिलषितं

मेऽस्त्विति ध्यायन् जपेत्। अभिलषितं तृप्ताः पितरः प्रयच्छन्तीति ह स्मरन्ति ॥ १६ ॥

भा०—यथाशक्ति श्वास को रोक कर अपने अभिलषित कामना का ध्यान करता हुआ "अमी मदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत०" मंत्र का जप करे (कि हे पितर! हमारी कामनायें पूरी करें) ॥ १६ ॥

तिस्रो दर्भपिञ्जूलीरञ्जने निघृष्य कर्षूषु निदध्याद्यथापिण्डम् ॥ २० ॥

अङ्ग्ध्वेत्यूहः ॥

भा०—बायें हाथ में उस अञ्जन से रंगी हुई कुश की तीन पिञ्जुली लेकर दहिने हाथ की अंगूठे की जड़ से पूर्व आदि तीन गड़हा में स्थित तीन पिण्डों पर एक २ क्रम से "असावेतत् त आञ्जनम्०" मंत्र पढ़कर प्रदान करे। पहिले और दूसरे पिंड पर पिञ्जुली देने पर एक २ बार हाथ धोलिया करे ॥ २० ॥

तैलं सुरभि च ॥ २१ ॥

सुरभि गन्धम्। अभ्यङ्ध्वानुलिम्पेत्यूहः ॥

भा०—इसके पीछे पिञ्जुली प्रदानानुसार इस मंत्र से उस २ के ऊपर तेल और सुगन्धि चन्दनादि प्रदान करे। विशेषता मंत्र में यह होगी कि आञ्जन शब्द के बदले में तैल और सुरभि शब्दों का प्रयोग होगा ॥ २१ ॥

पिण्डप्रभृति यथार्थमूहेत् ॥ २२ ॥

तत्तद्विषयानुगुणमूहेत् ॥

भा०—इसी प्रकार पिण्ड प्रभृति की यथार्थ ऊहा करे ॥ २२ ॥

अथ निह्नवनम् ॥ २३ ॥

अथानन्तरदेशे कर्षूणां पश्चात् पाणी निधाय। निह्नवनमिति वक्ष्यमाणस्य संज्ञा व्यवहारार्था ॥

भा०—अब वक्ष्यमाण क्रिया को निन्हवन कहते हैं, उसको कहेंगे ॥ २३ ॥

पूर्वस्यां कर्ष्वां दक्षिणोत्तानौ पाणी कृत्वा नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरश्शूषायेति ॥ २४ ॥

अथ पूर्वस्याः कर्ष्वाः पश्चात्समीपे दक्षिणं पाणिं प्रागग्राङ्गुलिमुत्तानं भूमौ निधाय तदुपरि तथैव सव्यं न्यञ्चं कृत्वा जपेत् ॥

सव्योत्तानौ मध्यमायां नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो रसायेति ॥ २५ ॥

सव्यस्योपरि दक्षिणं न्यञ्चं कृत्वा ॥

दक्षिणोत्तानौ पश्चिमायां नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो मन्यव इति ॥ २६ ॥

स्पष्टम् ॥

अञ्जलिं कृत्वा नमो व इति ॥ २७ ॥

नमस्काराञ्जलिं कृत्वा पितॄनुपतिष्ठते ॥

भा०—इसके पश्चात् पहिले पिण्ड पर दक्षिण हाथ करतल उत्तान रक्ख कर उस पर वांया करतल औंधे मुंह उसी दहिने करतल पर नीचे को हो। उसके पश्चात् मध्यम पिण्ड पर वामोत्तान दोनों हाथ (वायां करतल चित्त और उस पर दहिना करतल नीचे को औंधे मुंह) पर अनन्तर शेष पिण्ड पर फिर दक्षिणोत्तान दोनों हाथ पर सबके अन्त में समस्त पिण्ड लक्ष्य करके अञ्जलि पूर्वक "नमो वः०" इत्यादि चार मंत्रों से चार नमस्कार करे॥ २४। २५। २६। २७॥

सूत्रतन्तून् कर्षूषु निदध्याद्यथापिण्डमेतद्व इति ॥२८॥

क्रमेण ॥

भा०—पत्नी कर्तृक सम्पादित रेशमी कपड़े के किनारे से एक २ सूत लेकर पूर्वादि गड़हे क्रम से पिता आदि के नाम ले लेकर "एतत्ते वासः०" इत्यादि मंत्र से पिण्ड आदि के ऊपर प्रदान करे।२८।

ऊर्जं वहन्तीरिति कर्षूरनुमन्त्रयेत् ॥ २९ ॥

सकृत् ॥

भा०—पूर्व स्थापित उस जल पात्र को बायें हाथ में लेकर पहिले की नाईं "पितृतीर्थ" मार्ग से अंगूठे से एक ही वार में तीन पिण्ड पर "ऊर्जं वहन्ति०" मंत्र से परिसिंचन करे ॥ २९ ॥

मध्यमं पिण्डं पुत्रकामां प्राशयेदाधत्तेति ॥ ३० ॥

पतिर्मन्त्रं ब्रूयात् ॥

भा०—पुत्र की कामना वाली पत्नी (परन्तु मंत्र को पति पढ़े) "आधत्त" मंत्र पढ़वा कर मध्यम पिण्ड को सबको या थोड़ा भक्षण करे ॥ ३० ॥

अभून्नो दूत इत्युल्मुकमग्नौ प्रक्षिपेत् ॥ ३१ ॥

यद्दक्षिणतो निहितं मन्त्रलिङ्गात् ॥

द्वंद्वं पात्राण्यतिहरेयुः ॥ ३२ ॥

निहितानि परिचारका उद्वासयेयुः ॥

भा०—"अभून्नो०" मत्र को पढ़कर गड्हे आदि के दक्षिणार्द्ध में रक्खा इंगोरा पर जल छिड़के और उस भस्म पर चरुस्थाली पात्र आदि धोकर लावे ॥ ३१ । ३२ ॥

एष एव पिण्डपितृयज्ञकल्पः ॥ ३३ ॥

कल्प इति प्रयोगक्लृप्तिरेवातिदिश्यते, न कालः । स त्वन्यतो विज्ञायते यस्मिन्नहोरात्रेऽमावास्याक्षणः तस्मिन्नेवापराह्णे कुर्यात् । विशेषस्तूच्यते ॥

भा०—यही पिण्डपितृ यज्ञकल्प है ॥ ३३ ॥

गृह्येऽग्नौ हविः श्रपयेत् ॥ ३४ ॥

चरुरेव न मांसम् ॥

तत एवातिप्रणयेत् ॥ ३५ ॥

गृह्याग्नेरेवैकदेशम् । प्रणीतस्य कर्मापवर्गे लौकिकत्वम् । अत्र ब्रह्मास्ति, दक्षिणा च हविरुच्छिष्टदानम् ॥

भा०—आहिताग्नि यजमान लोग इस श्राद्ध के हवि को गृह्य अग्नि में पकावें और उसी में पूर्वोक्त अति प्रणयन करें ॥ ३४ । ३५ ॥

एका कर्षूः ॥ ३६ ॥

एकस्यामेव पित्रादीनां त्रयाणामपि सर्वं यथाक्रमं कुर्यात् ॥

भा०—अनाहिताग्नि के गृह्याग्नि में वह सम्पन्न होगा। इस कार्य में तीन कर्षू न होंगे वरन एक ही कर्षू में तीनों पिता, पितामह; प्रपितामह का कार्य होगा ॥ ३६ ॥

न स्वस्तरः ॥ ३७ ॥

न स्वस्तरदेशे द्रव्याणां निधानम् ॥

भा०—और स्वस्तर देश में द्रव्यों का सादन भी नहीं होगा ॥ ३७ ॥

इन्द्राण्याः स्थालीपाकस्यैकाष्टकीति जुहुयात् ॥ ३८ ॥

चैत्री पौर्णमासी कालः 'चैत्र्याश्वयुजी' इति गौतमवचनात्। 'इन्द्राण्यै त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः। एकाष्टकेति प्रधानाहुतिः चरुतन्त्रमेतत् ॥

इति द्राह्यायणगृह्यवृत्तौ तृतीयस्य पटलस्य पञ्चमः खण्डः
पटलश्च समाप्तः ॥ ३ । ५ ॥

भा०—चैत्र की पूर्णमासी को एकाष्टका को स्थालीपाक से "इन्द्राण्यै त्वा जुष्टं निर्वपामि" मंत्र पढ़कर एकाष्टका की प्रधान आहुति देवे ॥ ३८ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्र वृत्ति के तीसरे पटल के पञ्चम
खण्ड का भाषानुवाद पूरा हुआ तीसरा पटल
भी समाप्त हुआ ॥ ३ । ५ ॥

उक्तानि नित्यानि। पुष्टिकामार्थानि च वक्ष्यमाणभोजननियमानपेक्षाणि मन्त्रक्रमानुसारेणोक्तानि। इदानीं वक्ष्यमाणकाम्यविशेषार्थ भोजननियममाह—

काम्येषु षड्भक्तानि त्रीणि वा नाश्नीयात् ॥ १ ॥

काम्यग्रहणाद्यत्र कामप्रतिपादनपरः कामशब्दः इच्छाशब्दो वा नास्ति तत्र नायं नियमः। चतुर्थ्यां पञ्चम्या वा आदित्योपस्थाने, 'भूर्भुवस्वरोम्, आदित्य नावम्, वास्तोष्पते'' इत्येतेपु; कम्बूकपण्योपतापिहोमेषु, ग्रन्थिकरणे, हरितगोमयप्रभृतिषु, आ च परिसमाप्तेर्नियमाभावः।

व्रीहियवान्ततण्डुलान् तिलतण्डुलान् कणान् कम्बूकान् पुरीषहरितगोमयं च परिचरणतन्त्रेण, जुहुयात्, शंकुशतं समित्तन्त्रेण वास्तूपतापिहोमौ चरुतन्त्रेण, शिष्टान् होमानाज्यतन्त्रेण । षड्भक्तानि त्र्यहम् ॥

भा०—काम्य कर्म करने के पहिले दिन तीन मध्यान्ह और दो रात्रि का भोजन छोड़ देवे । यदि एक साथ दोनों भोजन न छोड़ सके तो कम से कम एक भोजन छोड़ देवे । अर्थात् दिन रात में केवल एक वार भोजन करे ॥ १ ॥

नित्यप्रयुक्तानामादितः ॥ २ ॥

नियमानन्तरं नियमेन प्रयोक्तुप्रशक्तानामादावभोजनम् ॥

जो कर्म किसी एक कामना की सिद्धि के लिये अनेक वार करना पड़े ऐसे कार्य में एक ही वार प्रथम वार पूर्वोक्त पहिला तीन दिन भोजन न करे या एक भोजन करे ॥ २ ॥

उपरिष्टात्सान्निपातिके ॥ ३ ॥

नैमित्तिकैकं कृत्वा अभोजनम् ॥

भा०—निमित्त घटना के पीछे नैमित्तिक कर्म्म समूह की दीक्षा कर्तव्य है, वही वैसे कर्म्मों के लिये निर्दिष्ट काल है । उसके पहिले अभोजन या एक भोजन या उपवास इनकी व्यवस्था होगी ॥ ३ ॥

एवं यजनीयप्रयोगेषु । ४ ।

यजनीय इति निर्दिश्य विहितेषु कर्मसु ॥

भा०—निर्दिष्ट विहित कर्मों में जो एक दिन में या अनेक दिनों में समाप्त हो ऐसे सब कर्म्मों में प्रति दिन प्रातःकाल कुछ थोड़ा सा खाकर तब कार्य में प्रवृत्त होवे ॥ ४ ॥

अर्धमासव्रती ॥ ५ ॥

"अर्धमासव्रती पौर्णमास्यां रात्रौ' इत्यादावर्धमासमभोजनम् ॥

अशक्तौ पेयमेकं कालम् ॥ ६ ॥

अर्धमासव्रते । पेयं क्षीरादि ॥

भा०—अर्द्धमास व्रत पूर्णमासी की रात्रि से आरम्भ होता है इसमें आधे मास तक विना भोजन किये रहना पड़ता है । यदि कारणवश विना भोजन के व्रती से न रहा जावे

तो प्रत्येक दिन केवल एक बार पेय (दूध आदि तरल पदार्थ) पान कर व्रत करे ॥ ५। ६ ॥

आरण्ये प्रपदं जपेदासीनः प्रागग्रेषु ॥ ७ ॥

अत्रासननियमादन्यत्र जपे त्वासननियमो नास्ति ॥

एवं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ८ ॥

एवं जपन् ब्रह्मवर्चसी भवति ॥

यथोक्तं पशुकामः ॥ ९ ॥

गोष्ठे पशुकामः उदगग्रेषु ॥

भा०—जिसको ब्रह्मवर्चस्वी होने की कामना हो वह वन में जाकर पूर्वाग्र बिछाये हुए कुशासन पर बैठ कर प्रपद पठित मंत्रों से साधना करे और जो कोई पुत्र या पशु की इच्छा करे वह वन में जाकर उत्तराग्र कुशासन पर बैठ कर प्रपद मंत्र से साधना करे ॥७-८-९

सहस्रबाहुरिति पशुस्वस्त्ययनकामो व्रीहियवौ जुहुयात् ॥१०

पशूनां शोभनाविच्छेदकामः। मिश्रीकृत्य त्रिः प्रक्षाल्य होमः। स्वाहेति च होमो द्वितीयः ॥

भा०—जो कोई पालतू गौ, भेड़, आदि पशु की भलाई चाहे वह "सहस्रबाहुः" मन्त्र से धान्य और जौ मिलाकर होम करे ॥१०॥

येनेच्छेत्सहकारं कौतोमतेनास्य महावृक्षफलानि परिजप्य दद्यात् ॥ ११ ॥

येन सख्यमिच्छेत्तस्मा उदुम्बरफलानि 'कौतोमतम्' इत्यनेनाभिमन्त्र्य दद्यात् ॥

भा०—जो किसी अन्य व्यक्ति की प्रसन्नता चाहे, वह "कौतोम०" मंत्र से कतिपय महावृक्ष के फलों (आम या सुपारी आदि) को दान करे। इन फलों को गुच्छा से स्वयं एक २ कर फल तोड़ लेवे ॥ ११ ॥

अर्धमासव्रती पौर्णमास्यां रात्रौ नाभिमात्रं प्रगाह्याविदासिनि ह्रदेऽक्षततण्डुलानास्येन जुहुयादुदके वृक्ष इवेति पञ्चभिः पार्थिवं कर्म ॥ १२ ॥

अविदासिनि अशोष्ये तिष्ठन्नेवाक्षततण्डुलान् । अर्थलोपान्न समित् । अग्निस्थान उदकम् । पृथिवीपतित्वप्राप्त्यर्थमिदमुक्तं कर्म ॥

भा०—पूर्णमासी की रात में जिस तालाब का जल ग्रीष्म ऋतु में भी न सूखे । उसमें नाभि मात्र जल में पैठकर, स्नान कर, मुंह में अक्षत तण्डुल लेकर "वृक्ष इव०" इत्यादि ५ मंत्रों से उसी जल में एक २ कर आहुति देवे और इन ५ मंत्रों में से प्रत्येक मंत्र में 'स्वाहा' शब्द का भी प्रयोग करता जावे ॥ १२ ॥

प्रथमयाऽऽदित्यमुपतिष्ठेद्भोगकामोऽर्थपतौ प्रेक्षमाणे ॥१३॥

"वृक्ष इव" इत्यादीनामेव प्रत्येकं कर्मोच्यते कामनाभेदेन । एषु नार्धमासव्रतित्वम् । द्रव्यानुभवकामः द्रव्यपतावात्मानं पश्यति सति ॥

भा०—उक्त पांच मंत्रों द्वारा पहिले पार्थिव कर्म कहा गया है । अब उन्हीं पांच मंत्रों में से प्रत्येक व्यवहार में एक २ दूसरे २ कार्य कहे जाते हैं । जिसको भोग की इच्छा होवे वह "वृक्ष इव०" मंत्र से सूर्य का उपस्थान करे । जिस स्थान में अभी कार्य की सिद्धि की सम्भावना हो, ऐसे स्थान में यह अनुष्ठान किया जाय । ऐसा ही करने पर वह प्रयोजन सिद्ध होगा ॥ १३ ॥

द्वितीययाऽक्षततण्डुलानादित्ये परिविष्यमाणे बृहत्पत्रस्वस्त्ययनकामः ॥ १४ ॥

"स्वाहा" इति द्वितीयाम् । पत्रं गमनसाधनं महतामश्वादीनां शोभनाविच्छेदकाम ॥

भा०—हाथी आदि बड़े वाहन के कल्याण के लिये "ऋतयं सत्ये०" इस दूसरे मंत्र से अक्षत तण्डुल मिलाकर हवन करे । जिस समय सूर्य मण्डल में "परिवेष" लगा हो उसी समय यह किया जावे ॥ १४ ॥

तृतीयया चन्द्रमसि तिलतण्डुलान् क्षुद्रपशुस्वस्त्ययनकामः ॥ १५ ॥

परिविष्यमाणे चन्द्रमसि । मिश्रीकृत्य होमः । स्वाहेति द्वितीयाम् । क्षुद्रपशवोऽजाविकादयः ॥

भा०—गौ, भेड़ आदि छोटे २ पशुओं के कल्याण चाहने वाले "अभिभगोऽसि०" तीसरे मंत्र से कुछ तिल तण्डुल मिलाकर होम करे। जिस समय चन्द्रमण्डल में परिवेष उपस्थित हो उसी समय यह कार्य किया जाय ॥ १५ ॥

चतुर्थ्याऽऽदित्यमुपस्थाय गुरुमर्थमभ्युत्तिष्ठेत् ॥ १६ ॥

महद्द्रव्यं प्राप्तुमुद्योगं कुर्यात् । एवं कृते फलातिशयो भवति ॥

भा०—यदि किसी बड़े प्रयोजन (अर्थ लाभ की) सिद्धि की कामना हो तो 'कोश इव०" मंत्र इस चौथे मंत्र से सूर्य का उपस्थान कर प्रयोजन को लक्ष्यकर यात्रा करने से प्रयोजन सिद्ध होकर निर्विघ्न घर वापस आवेगा ॥ १६ ॥

पञ्चम्याऽऽदित्यमुपस्थाय गृहानेयात् ॥ १७ ॥

वेश्म प्रविशेत् उत्तिष्ठेत् फलातिशयो भवति ॥ १७ ॥

भा०—"आकाशस्यैष०" इस पञ्चम मंत्र से सूर्य्योपस्थान करने से अपने घर को लक्ष्य कर प्रति यात्रा में करने से निर्विघ्न घर वापिस आवेगा ॥ १७ ॥

अनकाममारं नित्यं जपेत् भूरिति ॥ १८ ॥

अहरहरामरणाद्यो जपेत् अनकाममरणं स लभते अकामो न म्रियते इत्यर्थः ॥

भा०—जो लोग बिना कष्ट अपनी आयु पूरी होने पर अपना मरण चाहें वे 'भूः" इस मंत्र को मरण काल तक सदा जाप करें। इस मंत्र के प्रभाव से शत्रु कृत मारण आदि से भय नहीं रहता और कुष्ठ आदि राज रोगों से भी मरने का भय नहीं रहता है ॥ १८ ॥

यजनीये जुहुयान्मूर्ध्नोऽधि म इति षड्भिर्वामदेव्यर्ग्भिर्महाव्याहृतिभिः प्राजापत्यया च ॥

नित्यादूर्ध्वमेतत् ॥

अलक्ष्मीनिर्णोदः ॥ २० ॥

उक्तस्य होमस्य फलं अलक्ष्म्या अपगमः ॥

भा०—"मूर्ध्नोऽधिमे०" इत्यादि छः मंत्रों से एक २ आहुति प्रदान करे। यह यजनीय प्रयोग में परिगणित है। इस क्रिया के फलसे दरिद्रता दूर होती है। उन छः मंत्रों से आहुति देने के अतिरिक्त

वामदेव्य ऋचा, महाव्याहृति और प्राजापत्य मंत्रों से भी होम करे ॥ १९ । २० ॥

अक्षेमे पथ्यपेहीति जपेत् ॥ २१ ॥

मन्त्रलिङ्गात् क्षेमो भवति ॥

भा०—यदि मार्ग में जाने में किसी प्रकार का भय उपस्थित होने की सम्भावना हो तो "अपेहि०" इत्यादि मन्त्र का जप करे ॥ २१ ॥

यशोऽहमित्यादित्यमुपतिष्ठेद्यशस्कामः पूर्वाह्णमध्यन्दिनापराह्णेषु ॥ २२ ॥

'तेन मा विश इत्यन्त एष मन्त्रः । अहरहरुपस्थानम् ॥

प्रातरह्नस्येति यथार्थमूहेत् ॥ २३ ॥

मध्याह्नस्य सायाह्नस्येति च ॥

भा०—जिसको यश की कामना होवे वह "यशोऽहं०" इन पांच मंत्रों से प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल में सूर्य का उपस्थान करे और "प्रातरन्हस्य०" इस पाठ की जगह मध्यान्ह काल में "मध्यान्हस्य" और सायंकाल में "अपरान्हस्य०" बदल कर पाठ करे ॥ २२ । २३ ॥

आदित्यनावमिति सन्ध्योपस्थानं स्वस्त्ययनम् ॥ २४ ॥

शुभागमप्राप्तिसाधनमेतदहरहरुपस्थानम् ॥

भा०—प्रातः और सायं दोनों सन्धि वेला में "आदित्य नावं०" मन्त्र से सूर्य्य का उपस्थान करे तो कल्याण होगा ॥ २४ ॥

उद्यन्तं त्वेति पूर्वां प्रतितिष्ठन्तं त्वेति पश्चिमाम् ॥ २५ ॥

'उद्यन्तं त्वा' इति पूर्वां सन्ध्यामुपतिष्ठन् "उदीयासम्" इति मन्त्रं समापयेत् । "प्रतितिष्ठन्तं त्वाऽऽदित्यानुप्रतितिष्ठासम्" इति पश्चिमाम् ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य पटलस्य प्रथमः खण्डः ॥ ४ । १ ॥

भा०—उक्त उपस्थान काल में प्रातः सन्धि समय "उद्यन्तं०" और सायं सन्धि काल में "प्रतितिष्ठन्तं०" मंत्रों का भी जप करे ॥ २५ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के चौथे पटलके प्रथम खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ४ । १ ॥

अर्धमासव्रती तामिस्रादौ ब्राह्मणानाशयेत् व्रीहिकंसौदनम् ।१

अपरपक्षे प्रतिपदि व्रीह्योदनं कंसैर्भोजयेत् ॥

तस्य कणानपरासु सन्ध्यासु प्रत्यग्ग्रामात् स्थण्डिलमुपलिप्य भलायेति जुहुयाद्भल्लायेति च ॥ २ ॥

उक्तव्रीहिकणान् सायंसन्ध्यासु आगामितामिस्रादेः । भलाय स्वाहा भल्लाय स्वाहेति च ॥

एवमेवापरस्मिंस्तामिस्रादौ ॥ ३ ॥

व्रीहिकंसौदनं ब्राह्मणानाशयेत् ॥

भा०—कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि को संधि वेला समय कांसे के वर्तन में तण्डुल पाक करके कई एक ब्राह्मणों को भोजन करावे। इस के अनन्तर अमावास्या तक प्रति सन्धि वेला में गांव के बाहर पश्चिम ओर चौराहे पर अग्नि जला कर उसमें "भलाय०" और "भल्लाय०" मन्त्रों से सूर्य के सम्मुख होकर इस तण्डुल की कणा आदि से होम करे। इसी पूर्वोक्त रीतिसे और भी दो कृष्णपक्षों में अनुष्ठान करे इससे तीन कृष्णपक्ष में यह अर्द्धमास व्रत सम्पन्न होगा ॥१।२।३॥

ब्रह्मचर्यमासमाप्तेः ॥ ४ ॥

आफलनिष्पत्तेः कर्म आ कर्मसमाप्तेर्ब्रह्मचर्यम् ॥ किं तत्फलम्—

भा०—जिस तीन कृष्णपक्ष में यह "अर्द्धमास व्रत" अनुष्ठान किया जावे उस में व्रत की समाप्ति तक व्रती ब्रह्मचर्य से रहे ॥ ४ ॥

आचितशतं भवति ॥ ५ ॥

यावद्द्रव्यमस्य पूर्वमाचितं संचितं तच्छतगुणितं भवति। इदमस्य फलम् ॥

भा०—जो कोई १०० आचित (२५ मन या एक गाड़ी बोझ) के प्राप्ति की कामना करे। वह अर्द्ध मास व्रत का अनुष्ठान करे तो उसको अपने संचित द्रव्य से सौगुणा बढ जावेगा ॥ ५ ॥

गौरे भूमिभागे ब्राह्मणो लोहिते क्षत्रियः कृष्णे वैश्योऽवसानं जोषयेत् समं लोमशमनिरिणमशुष्कम् ॥ ६ ॥

अवसानं वासस्थानं सेवेत। श्वभ्रादिरहितं तृणबहुलमनूषरमनति कठिनमुदकबहुलमिति यावत्॥

यत्रोदकं प्रत्यगुदीचीं प्रवर्तेत॥ ७॥

प्रत्यगुदक्प्रवणम्॥

अक्षीरिणः कण्टकिनः कटुकाश्चात्रौषधयो न स्युः॥८॥

अक्षीरिणः कण्टकिनः कटुरसाश्च वृक्षा यत्र पूर्वमपि स्युः तमपि वर्जयेत्॥

भा०—अब वास्तु प्रकरण आरम्भ हुआ। अन्यान्य मकानसे यथा सम्भव दूर पर अपने रहने का मकान बनाने के लिये उपयोगी अच्छी भूमि लेवे। वास की भूमि समतल हो, घासों से छिपी रहे, तालाब आदि जलाशय से हठात् गिर जाने का भय न हो, ऐसे स्थान के पास पूर्व या उत्तर दिशा में बड़ा जलाशय हो, और जिस स्थान के पास क्षीरी, कांटेदार, और कड़ुई औषधि वृक्ष न हों। ऐसा स्थान वास के लिये पसन्द करे जिस स्थानकी धूलिका रङ्ग गौर हो वह ब्राह्मणके रहने योग्य जानो। क्षत्रिय के लिये लाल रङ्गकी धूल वाली भूमि और वैश्य वर्ण के लिये काली रङ्ग की भूमि चाहिये॥ ६। ७। ८॥

दर्भसंमितं ब्रह्मवर्चस्यम्॥ ९॥

दर्भसंयुक्तं, ब्रह्म वेदः तच्चोदितानुष्ठानजनितं वैमल्यं ब्रह्मवर्चसं तदर्थं ब्रह्मवर्चस्यम्॥

बृहत्तृणैर्बल्यम्॥ १०॥

स्थूलतृणैर्युक्तं बल्यं बलार्थम्॥

मृदुतृणैः पशव्यम्॥ ११॥

शादाभिर्मण्डलद्वीपिभिर्वा दीर्घस्थूलीभिः मृदुतृणैर्युक्तं पशव्यर्थम्॥

भा०—जिस स्थान में समधिक कुश जन्मता हो वह ब्राह्मण के लिये जिस स्थान में घोड़ा आदि के खाने के योग्य बड़ी घास आदि बहुतायत से पाई जावें वह क्षत्रिय के लिये और जिस स्थान में कोमल २ घास हो वह वैश्य के लिये जानो॥ ९। १०। ११॥

यत्र वा स्वयं कृताः श्वभ्रास्सर्वतोऽभिमुखाः स्युः ॥१२॥

अप्रयत्नजाः कर्ष्व ऊर्ध्वमुखोदका यत्र तदपि गव्यम् ॥ आवासभूमिरुक्ता। अथ गृहमाह—

भा०—जिस जमीन के चारों ओर अकृत्रिम गड़हा हो और सब ओर जल बहने वाले गड़हे हों, ऐसी जमीन भी वासोपयोगी है ॥१२॥

प्राग्द्वारं धन्यं यशस्यं चोदग्द्वारं पुत्र्यं पशव्यं च दक्षिणापश्चिमद्वारे सर्वे कामा अनुद्वारं गेहद्वारम् ॥ १३ ॥

यस्यां दिशि बहिर्द्वारं तस्यामेवान्तर्द्वारं स्यात् ॥

असंलोकी स्यात् ॥ १४ ॥

गृहमध्ये द्वारं न स्यात्। द्वारद्वयं परस्परमृजु स्यादिति केचित् ॥

अथ तद्गृहवासिनामभ्युदयसाधनं होममाह—

भा०—घर का बाहरी द्वार को यश और बल की कामना वाला पूर्व मुँह बनवावे। जो पुत्र और पशु की कामना करे वह उत्तर मुँहद्वार बनावे। और जिसको कोई विशेष कामना न हो वह दक्षिण मुँह द्वार बनवावे। परन्तु पश्चिम मुँह द्वार न बनवावे ॥ मकान के भीतर के घर के द्वार आदि इस प्रकार रहें। जिसमें घर के भीतर के मनुष्य आदि बाहरी द्वार से न दीख पड़ें ॥ १३। १४ ॥

पयसो हविः ॥ १५ ॥

वास्तोष्पतये त्वा जुष्टं निर्वपामीति निर्वापः ॥

भा०—घर में रहने वालों के कल्याण के लिये "वास्तोष्पतये त्वा जुष्टं निर्वपामि०" मन्त्र से पायस का हवन करे ॥ १५ ॥

कृष्णा च गौः ॥ १६ ॥

वसार्थम् ॥

भा०—और काली गौ वसा के लिये लावे ॥ १६ ॥

अजो वा श्वेतः पायस एव वा ॥ १७ ॥

पायस एवैको हविः स्यात्। पशोर्निवृत्तिरेवास्मिन पक्षे। होमेऽपि वसाया निवृत्तिरेव ॥

भा०-या सफेद बकरा या केवल पायस ही से हवन करे ॥ १७ ॥

मध्ये वेश्मनो वसां पायसं चाज्येन मिश्रमष्टगृहीतं जुहुया-द्वास्तोष्पत इति ॥ १८ ॥

यावदन्तर्गृहायाममध्ये रज्जुचतुष्टयं कृत्वा प्रतिदिशं मध्ये वेश्मनः प्रतिकोणं चायम्यान्तर्गृहरज्जुसङ्गसदेशे रज्ज्वन्तरेषु च प्रागुपक्रमं प्रदक्षिणं गोमयेनोपलिप्य शमीपलाशश्रीपर्णीनां पत्रैः पुष्पैस्तण्डुलैश्च गृहं सर्वतः प्रकीर्य मध्ये उपलिप्ते प्रपदान्तं कृत्स्ने गृह्येऽग्नौ व्याहृतिभिराज्यं हुत्वा वसां पायसं च मिश्रीकृत्याज्येन च मिश्रितादष्टाववदानानि जुह्वां गृहीत्वोपस्तरणाभिघारणवर्जं 'धानावन्तम्' इति गीत्वा 'वास्तोष्पते' इति जुहुयात् ॥

भा०—मकान के भीतर लम्बाई और चौड़ाई का नाप करके घर के प्रति दिशा में घर के प्रति कोण को जहां नाप के रस्सी का संगम हो उन सङ्गम स्थलों में पूर्व से आरम्भ कर प्रदक्षिणा क्रम से गौ के गोबर से लीप कर शमी, पलाश और बेलके पत्तों, फूलों और चावलों को छींट कर लीपे हुये स्थान के बीचमें प्रपद तक सारी क्रियाओं को कर के सम्पूर्ण गृह्य अग्नि में व्याहृतियों से आज्य की आहुति कर वसा घृत पायस को मिला कर और आज्य को मिला कर आठ खण्ड करके (जिस प्रकार ४ वार लेना कहा गया है, उसी प्रकार) प्रतिवार ८ ग्रहण करता हुआ होम करे। उनमें से "वास्तोष्पते" मन्त्र से पहिले आहुति देवे और इसके पीछे "वामदेव्य" संज्ञक तीन मन्त्रों से उसके पश्चात् महाव्याहृति आदि का प्रयोग करे अनन्तर "प्रजापतये०" मंत्र से शेष आहुति देवे ॥ १८ ॥

याश्च पराः ॥ १९ ॥

याः पराश्च 'हये राके' इत्याद्यश्चतस्रः ताभिश्च जुहुयात् । चकारात्पूर्ववदष्टगृहीतम् ॥

भा०—"हयेराके०" इत्यादि चार मन्त्रों से चार आहुति देव और पूर्व की भांति आठ वार ग्रहण करके ॥ १९ ॥

सप्तालक्ष्मीनिर्णोदे ताभिश्च ॥ २० ॥

ताभिरिति प्रकृतापेक्षत्वाद्याः परा इत्यनुकृष्यते । अलक्ष्मीनि-

र्गोदे याः परा वामदेव्यर्ग्भिर्महाव्याहृतिभिः प्राजापत्ययेति सप्त ताभिश्च जुहुयात् च शब्दः पूर्ववत् ॥

भा०—दरिद्रता दूर करने के लिये जो पूर्व छः मन्त्रों से आहुतियां कही गई गई हैं उनसे भी और वामदेव्य ऋचा, व्याहृतियां और प्राजापत्य मन्त्रों से भी आहुति देवे ॥ २० ॥

हुत्वा दिशां बलीन् नयेत ॥ २१ ॥

हुत्वेति स्विष्टकृत्प्रतिषेधार्थं, उक्तान्येव हवींषि हुत्वेति तत्प्रतिषेधात्। नात्राज्यभागौ स्तः। तेषामभावात् पुरस्ताद्व्याहृतिहोमा स्युः। गानान्तं समाप्य बलिहरणम्। नात्र हविरुच्छिष्टप्राशनम्, नापि तस्य ब्राह्मणे दानं, तस्य बलिहरणे विनियोगात्। उक्ता बलिहरणमन्त्राः सामविधौ—'अथातो वास्तुशमनम्' इत्यादिना। तत्सर्वं मन्त्रशेषत्वेन परिगृह्यते। कथमेतदवगम्यते ? 'पायसं हविः' इति वक्तव्ये बहुलवचनाद्विभक्तिव्यत्ययः कृतो बह्वत्रानुक्तमपि विद्यत इति सूचयितुम्। अत एव दिग्ग्रहणं मध्यस्याप्युपलक्षणार्थम्। उपलिप्तस्थानेषु पलाशमध्यमपत्राणि स्थापयित्वा तेषु बलीन्निदध्यात् 'प्रजापतये स्वाहा' इति मध्ये 'इन्द्राय स्वाहा' इति पूर्वे, 'वायवे स्वाहा' इति दक्षिणपूर्वे, 'यमाय स्वाहा' इति दक्षिणे, पितृभ्यस्स्वाहा' इति प्राचीनावीती पितृतीर्थेन दक्षिणपश्चिमे, यज्ञोपवीत्यप उपस्पृश्य 'वरुणाय स्वाहा' इति पश्चिमे, 'महाराजाय स्वाहा' इत्युत्तरपश्चिमे, 'सोमाय स्वाहा' इत्युत्तरे, 'महेन्द्राय स्वाहा' इत्युत्तरपूर्वे, 'वासुकये स्वाहा' इति भूमौ यत्र कुत्रचित्, 'नमो ब्रह्मणे' इत्युपरिष्टात्। एष एव बलिक्रमः। सर्वेषां वैश्वदेववत् उभयतः परिषेकः ॥

अवान्तरदिशां चोर्ध्वावाचिभ्यां च ॥ २२ ॥

एतत्पूर्वप्रोष्ठपदे नक्षत्रे कार्यम्। एवं कृते बहुपशुधनधान्यहिरण्यमायुष्मत् पुरुषं वीरसूसुभगाऽविधवस्त्रीकं शिवं पुण्यं वास्तु भवति ॥

भा०-वास्तु होम करने के पीछे प्रदक्षिणानुसार प्रत्येक दिशाओं में और प्रति कोणों में क्रम से १० बलि प्रदान करे। इस क्रम से करे कि घर के भीतर लीपे हुये स्थानों में पलाश के पत्तों को रक्ख कर

उन पर बलियों को मंत्र पढ़ २ कर रक्खे। "प्रजापतये स्वाहा०" मंत्र से मध्य भाग में "इन्द्राय स्वाहा०" मन्त्र से पूर्व दिशा में "वायवे स्वाहा" मन्त्र से अग्निकोण में "यमाय स्वाहा०" मन्त्र से दक्षिण दिशा में, "पितृभ्यस्स्वाहा०" मंत्र से प्राचीनावीती हो के पितृतीर्थ से नैर्ऋत्य कोण में, तब जनेऊ बदल कर यज्ञोपवीती होकर जल से हाथ धोकर "वरुणाय स्वाहा" मन्त्र से पश्चिम दिशा में, "महाराजाय स्वाहा" मन्त्र से वायव्य कोण में, "सोमाय स्वाहा" मन्त्र से उत्तर दिशा में, "महेन्द्राय स्वाहा" मंत्र से ईशान कोण में, "वासुकये स्वाहा" मंत्रसे भूमिमें (जहाँ कहीं) और "नमो ब्रह्मणे स्वाहा" मंत्र से ऊपर को यही बलि का क्रम है ॥ २१ । २२ ॥

एवं संवत्सरे संवत्सरे नवयज्ञयोर्वा ॥ २३ ॥

षट्सु षट्सु मासेषु प्रोष्ठपद एव । चतुर्षु मासेषु वा । तथा श्रुतेः। बहुकृत्वः करणे फलभूयस्त्वम् ॥

भा०—प्रति दिन बलि कर्म करे या प्रति वर्ष जिस समय नया अनाज हो और जिस समय जौ आदि शस्य नूतन हों उन २ नवान्न समय में इन तीन बलि कर्म को करने से भी हो सकता है ॥ २३ ॥

वशंगमावित्येताभ्यामाहुतिं जुहुयाद्यमिच्छेद्वशमायान्तं तस्य नाम गृहीत्वाऽसाविति वशी हास्य भवति ॥ २४ ॥

मम विष्णुशर्माऽयं वशमेत्विति वन्नाम गृहीत्वा ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य पटलस्य
द्वितीयः खण्डः ॥ ४ । २ ॥

भा०—जिस व्यक्ति को वश करने की इच्छा हो उसका नाम लेकर "वशङ्गमौ०" मन्त्र से व्रीहि होम और "शङ्खश्च०" मन्त्र से यव होम करे। जब तक काम ठीक सिद्ध न हो तब तक प्रतिदिन करता जावे ॥ २४ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्र वृत्ति के चौथे पटल के दूसरे खण्ड
का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ४ । २ ॥

अर्धमासव्रती पौर्णमास्यां रात्रौ शंकुशतीं जुहुयादेकाक्षर्यया ऽऽयसान्वधकामः ॥ १ ॥

'आकूतिम्' इति मन्त्रं वध्यमानतया शत्रून् ध्यायन् जुहुयात्। आयसशंकूनामेकैकमनु यज्ञियस्य वृक्षस्य शंकुनाऽपि जुहुयात् ॥

खादिरानायुष्कामोऽथापरम् ॥ २ ॥

अर्धमासव्रतिन एव खादिरशंकुभिः कर्तव्यं कर्मान्तरमित्यर्थः ॥

भा०—'आकूतीं देवीं' इस मंत्र को एकाक्षरी कहते हैं। इस एकाक्षरी मंत्र विषयक जो दो कर्म कहे जाने वाले हैं। उन्हीं दो कर्मों को "अर्द्धमास व्रत" समझो। यदि अपनी या दूसरे की आयु बढाने की कामना हो तो खैर की १०० कील होम करे और अपनी या दूसरे को मारने की कामना हो तो लोहे की १०० कीलकों का होम करे। ये दोनों काम पूर्णिमा की रात में करे और इनमें एकाक्षरी मन्त्र का प्रयोग करे। यही शंकुशत नामक पहिला कर्म है॥ १। २॥

प्राङ्वोदङ्वा ग्रामान्निष्क्रम्य स्थण्डिलं समूह्य पर्वते वाऽऽरण्यैर्गोमयैस्तापयित्वाऽङ्गारानपोह्यास्येन जुहुयात ॥ ३ ॥

अथेति प्रकृतापेक्षत्वात् अर्धमासव्रती, अपरमिति खादिरशाखाभिः आकूतिमित्यनयाऽपरं कर्म कुर्यादित्यर्थः। आरण्यैशुष्कैर्गोमयैः स्थण्डिलमतिशयेन तापयित्वाऽग्निमपोह्य तप्तायां भूमौ वक्त्रेण शंकुशतं जुहुयात् ॥

भा०—गांव की वस्ती से पूर्व या उत्तर जाकर किसी एक चौराहे या पहाड़ पर जङ्गली कण्डे से एक वेदी अच्छी प्रकार लोहे के पात्र को तपाकर, उस अङ्गार आदि को हटाकर इस एकाक्षरी मंत्र को मन ही मन पाठ कर अपने मुंह में घी लेकर उससे होम करे॥३॥

द्वादश ग्रामा ज्वलिते ॥ ४ ॥

खादिरशंकुना तप्तभूमिसंयोगाद्यदि ज्वलनं स्यात्तदा द्वादश ग्रामास्तस्य होमात्सिद्ध्यन्ति ॥

त्र्यवरा धूमे ॥ ५ ॥

धूममात्रे जाते त्र्यवरग्रामास्सिद्ध्यन्ति ॥

भा०-यदि खैर की कीलके तप्त होने से भूमि तप्त होकर शीघ्र हा ज्वाला उठे नो अनुष्ठाता को १२ गांव लाभ होंगे और यदि कुछ भी ज्वाला न उठे वरन धूम ही हो तो तीन ही गांव लाभ होंगे ॥४।५॥

उन पर बलियों को मंत्र पढ़ २ कर रक्खे । "प्रजापतये स्वाहा०" मंत्र से मध्य भाग में "इन्द्राय स्वाहा०" मन्त्र से पूर्व दिशा में "वायवे स्वाहा" मन्त्र से अग्निकोण में "यमाय स्वाहा०" मन्त्र से दक्षिण दिशा में, "पितृभ्यस्स्वाहा०" मंत्र से प्राचीनावीती हो के पितृतीर्थ से नैर्ऋत्य कोण में, तब जनेऊ बदल कर यज्ञोपवीती होकर जल से हाथ धोकर "वरुणाय स्वाहा" मन्त्र से पश्चिम दिशा में, "महाराजाय स्वाहा" मन्त्र से वायव्य कोण में, "सोमाय स्वाहा" मन्त्र से उत्तर दिशा में, "महेन्द्राय स्वाहा" मंत्र से ईशान कोण में, "वासुकये स्वाहा" मंत्रसे भूमिमें (जहाँ कहीं) और "नमो ब्रह्मणे स्वाहा" मंत्र से ऊपर को यही बलि का क्रम है ॥ २१ । २२ ॥

एवं संवत्सरे संवत्सरे नवयज्ञयोर्वा ॥ २३ ॥

षट्सु षट्सु मासेषु प्रोष्ठपद एव । चतुर्षु मासेषु वा । तथा श्रुतेः । बहुकृत्वः करणे फलभूयस्त्वम् ॥

भा०—प्रति दिन बलि कर्म करे या प्रति वर्ष जिस समय नया अनाज हो और जिस समय जौ आदि शस्य नूतन हों उन २ नवान्न समय में इन तीन बलि कर्म को करने से भी हो सकता है ॥ २३ ॥

वशंगमावित्येताभ्यामाहुतिं जुहुयाद्यमिच्छेद्वशमायान्तं तस्य नाम गृहीत्वाऽसाविति वशी हास्य भवति ॥ २४ ॥

मम विष्णुशर्माऽयं वशमेत्वितिवन्नाम गृहीत्वा ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य पटलस्य द्वितीयः खण्डः ॥ ४ । २ ॥

भा०—जिस व्यक्ति को वश करने की इच्छा हो उसका नाम लेकर "वशङ्गमौ०" मन्त्र से व्रीहि होम और "शङ्खश्च०" मन्त्र से यव होम करे । जब तक काम ठीक सिद्ध न हो तब तक प्रतिदिन करता जावे ॥ २४ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्र वृत्ति के चौथे पटल के दूसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ४ । २ ॥

अर्धमासव्रती पौर्णमास्यां रात्रौ शंकुशतीं जुहुयादेकाक्ष-र्ययाऽऽयसान्वधकामः ॥ १ ॥

'आकूतिम्' इति मन्त्रं वध्यमानतया शत्रून् ध्यायन् जुहुयात्। आयसशंकूनामेकैकमनु यज्ञियस्य वृक्षस्य शंकुनाऽपि जुहुयात् ॥

खादिरानायुष्कामोऽथापरम् ॥ २ ॥

अर्धमासव्रतिन एव खादिरशंकुभिः कर्तव्यं कर्मान्तरमित्यर्थः ॥

भा०—'आकूतों देवीं' इस मंत्र को एकाक्षरी कहते हैं। इस एकाक्षरी मंत्र विषयक जो दो कर्म कहे जाने वाले हैं। उन्हीं दो कर्मों को "अर्द्धमास व्रत" समझो। यदि अपनी या दूसरे की आयु बढाने की कामना हो तो खैर की १०० कील होम करे और अपनी या दूसरे को मारने की कामना हो तो लोहे की १०० कीलकों का होम करे। ये दोनों काम पूर्णिमा की रात में करे और इनमें एकाक्षरी मन्त्र का प्रयोग करे। यही शंकुशत नामक पहिला कर्म है ॥ १ । २ ॥

प्राङ्वोदङ्वा ग्रामान्निष्क्रम्य स्थण्डिलं समूह्य पर्वते वाऽऽरण्यैर्गोमयैस्तापयित्वाऽङ्गारानपोह्यास्येन जुहुयात ॥ ३ ॥

अथेति प्रकृतापेक्षत्वात् अर्धमासव्रती, अपरमिति खादिरशाखाभिः आकूतिमित्यनयाऽपरं कर्म कुर्यादित्यर्थः। आरण्यैश्शुष्कैर्गोमयैः स्थण्डिलमतिशयेन तापयित्वाऽग्निमपोह्य तप्तायां भूमौ वक्त्रेण शंकुशतं जुहुयात् ॥

भा०—गांव की वस्ती से पूर्व या उत्तर जाकर किसी एक चौराहे या पहाड़ पर जङ्गली कण्डे से एक वेदी अच्छी प्रकार लोहे के पात्र को तपाकर, उस अङ्गार आदि को हटाकर इस एकाक्षरी मंत्र को मन ही मन पाठ कर अपने मुंह में घी लेकर उससे होम करे॥३॥

द्वादश ग्रामा ज्वलिते ॥ ४ ॥

खादिरशंकुना तप्तभूमिसंयोगाद्यदि ज्वलनं स्यात्तदा द्वादश ग्रामास्तस्य होमात्सिद्ध्यन्ति ॥

त्र्यवरा धूमे ॥ ५ ॥

धूममात्रे जाते त्र्यवरग्रामास्सिद्ध्यन्ति ॥

भा०-यदि खैर की कीलके तप्त होने से भूमि तप्त होकर शीघ्र हा ज्वाला उठे तो अनुष्ठाता को १२ गांव लाभ होंगे और यदि कुछ भी ज्वाला न उठे वरन धूम ही हो तो तीन ही गांव लाभ होंगे ॥४।५॥

कम्बूकान् सायंप्रातर्जुहुयान्नास्य वृत्तिः क्षीयते ॥

शङ्खलया 'आकूतिम्' इत्यहरहर्जुहुयात्। स्वाहेति द्वितीयाम् ॥

भा०—सूसी से "आकूतिं"मंत्र पढ़कर प्रतिदिन स्वाहा जोड़कर आहुति करे तो उसकी वृत्ति का नाश नहीं होता है ॥ ६ ॥

इदमहमिममिति पण्यहोमं जुहुयात् ॥ ७ ॥

येन येन पणते तेन तेन होमं हुत्वा व्यवहारतो द्रव्यवृद्धिर्भवति। द्रव्यानुसारं च तन्त्रं, परिचरणतन्त्रं चेत् स्वाहेति द्वितीयाऽऽहुतिः ॥

पूर्णहोमं यजनीये जुहुयात् ॥ ८ ॥

'पूर्णहोमम्' इति मन्त्रादिः। इतिशब्दाभावो मन्त्रलिङ्गानुसरणार्थः। अतो यशः फलम् ॥

इन्द्रामवदादिति सहायकामः ॥ ९ ॥

स्पष्टम् ॥

भा०—यदि ऐसी इच्छा हो कि हम जो २ व्यवहार करें उसकी उन्नति होवे व्यवहार की वस्तु का कुछ अंश लेकर "इदमहमिमं०"मंत्र से होम करे। यदि यश की इच्छा हो तो "पूर्णं होमं यशसे जुहोमि०" मन्त्र से होम करे। और यदि सहाय कामना हो तो "इन्द्रामवदात्०" मन्त्र से होम करे। ये दोनों होम यजनीय प्रयोग हैं ॥ ७। ८। ९ ॥

अष्टरात्रोपोषितः प्राङ् वोदङ् वा ग्रामाच्चतुष्पथे समिद्ध्याग्निमौदुम्बर इध्मः स्यात् स्रुवचमसौ च जुहुयादन्नं वा इति श्रीर्वा इति ॥ १० ॥

स्रुवचमसौ चौदुम्बरौ चमस आज्यधारणार्थः। 'अन्नं वा इति द्वाभ्याम्' इति सिद्धे पृथग्ग्रहणं विषयबहुत्वार्थं, अतः 'उपतापिहोमे, अक्षेमे पथि' इत्यत्र चानयोरप्यनुवृत्तिस्सिद्धा भवति। अन्यथाऽऽनन्तर्यात् 'अन्नस्य' इत्येकस्यैवानुवृत्तिस्स्यात् ॥ १०

भा०—यदि ऐसी इच्छा हो कि मैं बहुत पुरुषों का मालिक या मान्य बनूं तो वह व्यक्ति आठ रात भोजन न करे। इसी बीच में गूलर की लकड़ी का स्रुवा, चमस और इध्म संग्रह कर अपने साथ लेकर गाँव के ईशान कोण में बाहर जाकर किसी चौराहे पर अग्नि स्थापन कर "अन्नं वा०" मंत्र से घी की आहुति देवे। और उसी के पश्चात् लगातार "श्रीर्वा एष०" मंत्र से दूसरी आहुति देवे ॥ १० ॥

ग्रामे तृतीयमन्नस्येति ॥ ११ ॥

तृतीयामिति पूर्वेण निर्देशः पूर्वाभ्यामस्य वक्ष्यमाणे फले समुच्चयार्थः ॥ ११ ॥

आधिपत्यं प्राप्नोति ॥ १२ ॥

सर्वेषां स्वामित्वम् ॥

उपतापिनीषु गोष्ठे पायसं जुहुयात् ॥ १३ ॥

व्याधितासु गोषु तन्निर्हरणार्थमेवेदम् । द्वितीयानिर्देशात् सर्वं जुहुयात् पूर्वोक्तैस्त्रिभिर्मन्त्रैः । अतो न स्विष्टकृत् तदभावान्नाज्यभागौ, तेषाम भावादादौ व्याहृतिभिर्होमास्स्युः ॥ १३

भा०—अनन्तर गाँव में वापिस आने पर "अन्नस्य घृतमिव" मन्त्र से तीसरी आहुति देवे । उस पुरुषाधिपत्य चाहने वाले व्यक्ति को यदि यह भी इच्छा हो कि मुझे बहुत पशु हों तो तीसरी आहुति को गोशाला में देवे । और यदि वह गोशाला गीली हो तो घी के बदले लोह चूर्ण की वहीं पर आहुति देवे ॥ ११ । १२ । १३ ॥

अक्षेमे पथि वस्त्रदशानां ग्रन्थिं कुर्यात् सहायिनां च स्वस्त्ययनानि ॥ १४ ॥

क्षेमसापेक्षे पथि गच्छन्नात्मनः सहायिनां च वस्त्रदशानां ग्रन्थिं कुर्यात् 'अन्नं वा' इत्यादिभिर्मन्त्रैः ॥

भा०—यदि मार्ग में दैवयोग से एकाएक किसी प्रकार का भय आ पड़े तो, शीघ्र ही अपने साथी पथिक के पास हो के पूर्वोक्त "अन्नं वा०" ३ मन्त्रों से स्वाहा जोड़ २ कर जप करते हुये कपड़े के किनारे के सूत आदि से गाँठ दे । इसका फ़ल यह होगा कि उसके साथी सहित सबको कल्याण होगा ॥ १४ ॥

क्षुधे स्वाहेत्येताभ्यामाहुतिसहस्रं जुहुयादाचितसहस्रकामः ।

यावद्द्रव्ये सति द्रव्यसचयवानयमिति लौकिका आहुः तत्सहस्रगुणितमस्य फलम् ॥

भा०—यदि ऐसी इच्छा हो कि हमारे पास जितना माल हो उसका हजार गुणा हो, वह "क्षुधे स्वाहा," क्षुत्पिपासाभ्यां स्वाहा" इन दो मन्त्रों से एक सहस्र आहुति देवे ॥ १५ ॥

वत्समिथुनयोः पुरीषेण पशुकामः, अविमिथुनयोः क्षुद्रपशुकामः ॥ १६ ॥

पुरीषेण 'क्षुधे स्वाहा' इत्येताभ्यामाहुतिसहस्रम् ॥

भा०–यदि ऐसी इच्छा हो कि हमारे पास बहुत पशु हो जावें तो वह दो बछड़े के सूखे गोबर से उक्त तीन मन्त्रोंसे १००० आहुति देवे यदि यह कामना हो कि मेरे पास छोटे २ बहुत पशु हो जावें वह दो भेड़ के सूखे गोबर से उक्त तीन मन्त्रों से १००० आहुति देवे ॥१६

हरितगोमयेन सायंप्रातर्जुहुयात् नास्य वृत्तिः क्षीयते ॥ १७

आर्द्रगोमयेन 'क्षुधे स्वाहा, क्षुत्पिपासाभ्यां स्वाहा' इत्येताभ्यामेव होमः। जुहुयादिति प्रकृते पुनर्वचनं आहुतिसहस्रनिवृत्त्यर्थं द्विजातिविहितवृत्तेरक्षयः फलम्। अहरहर्होमः ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य पटलस्य तृतीयः खण्डः ॥४॥३॥

भा०–जो यह चाहे कि मेरी वृत्ति का नाश न हो तो वह, गौ के गीले गोबर से उक्त तीन मन्त्रों से १००० आहुति देवे ॥ १७ ॥

इति द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति के चौथे पटल के तीसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ४ ॥ ३ ॥

विषवता दष्टमद्भिरभ्युक्षन् जपेन्मा भैषीरिति ॥ १ ॥

विषनाशः फलम् ॥

भा०–बिषधर सांप, बिच्छू आदि के काटने पर, उस काटे हुये स्थान को धोकर "माभैषीर्न०" मन्त्र का जप करे। इससे सब प्रकारके विष दूर होंगे ॥ १ ॥

स्नातकस्संविशन् वैणवं दण्डमुपनिदध्यात्तुरगोपायेति स्वस्त्ययनम् ॥ २ ॥

शयानस्समीपे निदध्यात्। उपद्रवरक्षा फलम् ॥

भा०–स्नातक अपने कल्याण के लिये शयनकाल में "तुरगोपाय०" मन्त्र से बाँस की एक छड़ी या लाठी अपने पास रक्खे ॥२॥

हतस्त इति क्रिमिमन्तं देशमद्भिरभ्युक्षन् जपेत्।

क्रिमिनाशः फलम् ॥

भा०–जिस किसी (घाव, जख्म आदि) स्थान में कीड़े पड़ गये हों उस स्थान को जल से धोकर "हतस्ते०" इत्यादि चार मन्त्रों का जप करें तो इसी से पेट या किसी स्थान में कीड़े पड़े हों सब के सब नष्ट हो जायेंगे ॥ ३ ॥

पशूनां चेदपराह्णे सीतालोष्टमाहृत्य तस्य प्रातः पांसुभिः प्रतिष्किरन् जपेत् ॥ ४ ॥

पशूनां क्रिमिनाशो भवेदिति यः कामयेत स सायाह्ने काले सीतालोष्टं कृषिदेशे कृष्टमृत्तिकाम् वैहायसीं कुर्यात् । पूर्व एव मन्त्रः ॥

भा०—यदि पशु आदि के कीड़ों को नाश करने की इच्छा हो तो किसी दिन दोपहर के पीछे हल जोतने से जो डेला निकला हो, उस डेला को लेकर खुले मैदान में ऊपर को झूला रक्खे, उसके दूसरे दिन उस डेले को फोड़कर उसकी धूलि, जहाँ कीड़े पड़े हों उस पर छींट २ कर उक्त चार मन्त्रों का जप करे, इसी से गो आदि पशु के सब प्रकार के कीड़े नष्ट हो जायेंगे ॥ ४ ॥

मधुपर्कं प्रतिगृहीष्यन्निदमहमिमामिति प्रतितिष्ठन् जपेत् ।५

दातुः परिचारकैराहृतेषु विष्टरादिषु मधुपर्कार्थं गां ध्यायन् 'अर्हणा' इति जपेत् मन्त्रलिङ्गात् । तत उदगग्रेषु दर्भेषु तिष्ठन् 'इदमहमिमाम् । इति जपेत् ॥

भा०-मधुपर्क के दाता, नौकरों द्वारा विष्टरादि लाने पर मधुपर्कार्थ गौ का ध्यान करता हुआ 'अर्हणा०' मन्त्र का जप करे उसके पीछे उत्तराग्र बिछाये हुये कुशों पर खड़े होकर "इदमहमिमाम्' मन्त्र का जप करे ॥ ५ ॥

अर्हयत्सु वा ॥ ६ ॥

मधुपर्कदानकाले वा ॥

भा०-या मधुपर्क होते समय अर्थात् आचार्यप्रभृति 'अर्हणीय' व्यक्ति के उत्तर भागमें गौ बाँधकर रक्खे और "अर्हणायु वासला" मन्त्रसे उन अर्हणीय व्यक्ति के आने पर अनुमोदन करे । जिस स्थान में इन "अर्हणीय" व्यक्ति की पूजा करने के लिये शिष्य आदि की इच्छा हो और जिस समय अर्चना करनी सम्भव हो उसी स्थान में उसी समय अर्हणीय व्यक्ति खड़ा होकर "इदमहमिमासं' मन्त्र पढ़े॥६॥

विष्टरपाद्यार्घ्याचमनीयमधुपर्काणामेकैकं त्रिर्वेदयन्ते ।।७।।

पञ्चविंशतिदर्भमयौ कूर्चौ विष्टरौ । पादप्रक्षालनार्थमुदकं पाद्यम् पुष्पसंयुक्तमुदकमर्घ्यम् । आचमनार्थमुदकमाचमनीयम् । दधिमधुघृतसंयुक्तो मधुपर्कः । तेषामेकैकमादाय तस्य तस्य प्रदानकाले त्रिस्त्रिर्ब्रूयाद्दाता विष्टरौ युगपत् । विष्टरौ, पाद्यं, अर्घ्यं आचमनीयं, मधुपर्क इति वक्तव्ये मधुपर्काणामिति बहुबचनं पूजार्थ, दातुरभ्युदयसूचनमेवपूजा ॥

भा०—विष्टर, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय और मधुपर्क ये पाँच पदार्थों को देते समय इनमें से एक २ करके तीन २ वार निवेदन करे ।। ७ ॥

गां च ॥ ८ ॥

गोदानकाले गामालभ्य गौर्गौर्गौरिति त्रिर्ब्रूयात् । पृथक्सूत्रकरणं गोस्तत्कालाहरणार्थम् ॥

भा०—और गौ को भी ॥ ८ ॥

उदञ्चं विष्टरमास्तीर्य या ओषधीरित्यध्यासीत ।९।

विष्टराविति त्रिरुक्ते तावादाय एकमुदग्रमास्तीर्य तस्मिन् 'या ओषधीः' इति पूर्वेणासीत ॥

पादयोर्द्वितीयया द्वौ चेत् ।१०।

वक्ष्यमाणैर्मन्त्रैः पादौ प्रक्षाल्य द्वितीयं विष्टरमुदगग्रमधस्तात् पादयोः 'या ओषधीः' इति द्वितीयया स्तृणुयात् । चेच्छब्दात् पादयोरनित्यो विष्टरः । तदा विष्टर इति त्रिर्वचनम् ॥

भा०—और अर्हणीय व्यक्ति विष्टर पाकर "या ओषधीः०" इन दो मंत्रों को पढ़कर उत्तराग्र कुशासन पर बैठ जावे । यदि पूजक दो विष्टर देवे तो पूर्वोक्त दो मंत्रों में से एक २ को पढ़कर इन दो विष्टरों को देवे ॥ ९ । १० ॥

अपः पश्येत् यतो देवीरिति । ११ ।

पाद्यमिति त्रिरुक्ते तूष्णीमादाय मन्त्रेण पश्येत् ॥

सव्यं पादमवसिञ्चेत् सव्यमिति । दक्षिणं दक्षिणमिति १२-१३

स्पष्टे ॥

उभौ शेषेण ॥ १४ ॥

'पूर्वमन्यम्' इति मन्त्रेणोभौ पादाववसिञ्चेत् ॥

भा०—तब एक विष्टर को आसन पर डाले और दूसरे को दोनों पैरों के नीचे रक्खे । पूजक से जल दिये जाने पर उस जल को "यतो देवी०" इस मन्त्र को पढ़ कर मान्य व्यक्ति उसको निरीक्षण करे । अनन्तर वह मान्य व्यक्ति थोड़ा जल देकर "सव्यं पादमवने निजे०" मंत्र पढ़कर अपना वांया पैर धोवे । उसके पश्चात् "दक्षिण पादमवनेनिजे०" मंत्र को पढ़कर अपना दहिना पैर धोवे । वाकी जल से दोनों पैर एकत्र धोवे ॥ ११ । १२ । १३ । १४ ॥

अन्नस्य राष्ट्रिरसीत्यर्घ्यं प्रतिगृह्णीयात् ।१५।

अर्घ्यमिति त्रिरुक्ते मन्त्रे प्रतिगृह्य तूष्णीमात्मानमभ्युक्षेत् ॥

यशोऽसीत्याचमनीयम् ।१६।

आचमनीयमित्युक्ते 'यशोऽसि' इति प्रतिगृह्य तूष्णीं पीत्वाऽऽचामेत् ॥

भा०—"अन्नस्य राष्ट्रिरसि०" मंत्रको पढ़कर मान्य व्यक्ति अर्हयिता का दिया अर्घ्य ग्रहण करे। अनन्तर पूजक द्वारा आचमनीय जल देने पर उस जलसे "यशोऽसि०" मंत्र पढ़कर आचमन विधि अनुसार मान्य व्यक्ति आचमन करे। उसके पश्चात पूजक से मधुपर्क दिये जाने पर मान्य व्यक्ति "यशसो०" मंत्र पढ़कर उसे ग्रहण करे ॥ १५ । १६ ॥

यशसो यशोऽसीति मधुपर्कम् ।१७।

मधुपर्क इति त्रिरुक्ते मन्त्रेण प्रतिगृह्य ॥

त्रिः पिबेद्यशसो महसः श्रिया इति ।१८।

'यशसो भक्षोऽसि, यशो मयि धेहि स्वाहा, महसो भक्षोऽसि, महो मयि धेहि स्वाहा, श्री भक्षोऽसि, श्रियं मयि धेहि स्वाहा। स्वाहाकारान्तता सूत्रवचनात् ॥

तूष्णीं चतुर्थम् ।१९।

पानम् ॥

भा०—लिये हुये उस मधुपर्क को "यशसो०" मंत्र को तीन बार पढ़कर उसके बाद चौथी वार विना मंत्र पढ़े पान करे ॥ १७-१८-१६ ॥

भूयोऽभिपाय ब्राह्मणायोच्छिष्टं दद्यात् ।२०।

अन्ते सकृदाचमनम्। वाक्यशेषादतिसिद्धे दद्यादिति ब्राह्मणालाभे अद्भिस्संप्रादयान्यस्मै दानार्थम् ॥

भा०—यदि मधुपर्क अधिक प्राप्त होजाय (जो ४ वार पीने पर भी शेष रहे) तो पांचवीं वार भी पीवे और शेष किन्हीं श्रद्धावान् ब्राह्मण को देवे ॥ २० ॥

गां वेदितामनुमन्त्रयेत मुञ्च गामित्यमुष्य चेत्यर्हयितुर्नामब्रूयात् ॥२१

'विष्णुशर्मणश्चोभयोः इतिवद्दातुर्नाम ब्रूयात् ॥

भा०—पीछे जब वह मान्य व्यक्ति मुंह आदि धोकर स्वस्थ चित्त होवें, तब शस्त्र हाथ में लेकर नापित आकर उस मान्य व्यक्ति को तीन वार जतलावे "गौर्गौर्गौः०" ऐसा ॥ तब नापित के उत्तर में मान्य व्यक्ति "मुञ्च गां०" मंत्र और "तंजह्यमुष्य०" मन्त्रों को पढ़कर

गौ छोड़ने की आज्ञा देवे। जिसमें गौ घास चरे और जल पीवे ॥२१॥

एवमयज्ञे । २२

यज्ञव्यतिरिक्तेषु मधुपर्कप्रतिग्रह एवमुक्त एव प्रकारः ॥

भा०—इसी प्रकार यज्ञ के अतिरिक्त अन्य समय में भी मधुपर्क को स्वीकार करने का यही क्रम है ॥ २२ ॥

कुरुतेति यज्ञे ।२३

यज्ञवेलायां तु गवि निवेदितायां कुरुतेति यजमानामात्यान् ब्रूयात्॥

आचार्य ऋत्विक् स्नातको राजा विवाह्यः प्रिय इति षडर्घ्याः। २४

आचार्यशिष्यस्य। ऋत्विग्यजमानस्य। स्नातक आसवनान्ते आचार्यस्य। विवाह्यः कन्यादातुः विवाहकाले। अन्यदा श्वशुरः कन्याप्रतिगृहीतुः। राजाऽभिषिक्तस्सर्वेषाम्। प्रियः प्रियस्य ॥

प्रतिसंवत्सरानर्हयेत् ॥ २५ ॥

संवत्सरमतीत्यागतान् ॥

पुनर्यज्ञविवाहयोश्च पुनर्यज्ञविवाहयोश्च ॥२६॥

अर्वागपि संवत्सरादागतानर्हयेत्। द्विरुक्तिः पटलसमाप्त्यर्था ॥

नारायणस्य पुत्रेण मखवाटनिवासिना।
रुद्रस्कन्देन सङ्क्षेपद्व्याख्यातं गृह्यशासनम् ॥

इति रुद्रस्कन्दकृतायां द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य पटलस्य चतुर्थः खण्डः पटलश्च समाप्तः।

❀ समाप्तं सवृत्तिकं द्राह्यायणं गृह्यसूत्रम् ❀

भा०—यज्ञ में खूंटे में बँधी गौ को छोड़ने के लिये पूंछने पर "करो०" अर्थात् उस "गौ को बध करो०" यही आदेश करे, परन्तु विवाहादि गृह्योक्त कर्मों में सदैव गौ को छोड़ने ही की व्यवस्था है। छः व्यक्ति मान्य या अर्हणीय होते हैं जैसे—आचार्य, ऋत्विक्, स्नातक, राजा, वर और गुणवान् अतिथि। इनको कम से कम प्रति तीसरे वर्ष के अन्त में पूजा करे। यज्ञ और विवाह के अवसरों पर मान्य गण वर्ष के बीच में भी जब कभी आवश्यक हो पूजे जावें ॥ २३। २४। २५। २६॥

भा०—इति रुद्रस्कन्दकृत द्राह्यायणगृह्यसूत्र की वृत्ति में उदयनारायण सिंह कृत भाषानुवाद सहित चौथे पटल का चौथा खण्ड समाप्त हुआ ॥४।४॥ और द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्ति का भाषानुवाद सहित ग्रन्थ भी समाप्त हुआ ॥

आर्यभटीय सटीक सानुवाद । मूल्य १)

महामति पं० आर्य्यभट कुसुमपुर निवासी ने वेद के अनुकूल आर्याछन्दों में यह अपूर्व ज्योतिष का ग्रन्थ शाके ४२१ में, बनाया था इसी पुस्तक में पृथ्वी का भ्रमण साफ २ लिखा है। इसकी भूमिका में समुद्रमथन, रामलीला, आदि पुराणोक्त उपाख्यानों का विचार किया गया है। यह ग्रन्थ आज तक हिन्दुस्तान में नहीं छपा था हमने इस को जर्मन देश से मंगवा कर मूल तथा पं० परमेश्वराचार्य कृत टीका और भाषानुवाद सहित छपवाया है। मूल्य १) है।

सूर्य सिद्धान्त भा० टी० और वृहद्भूमिका सहित

मूल्य २॥)

यह ग्रन्थ—सिद्धान्त ज्योतिष के उपलब्ध ग्रन्थों में सबसे प्राचीन सर्वमान्य है। भारतवर्ष में ज्योतिष के अनुसार पञ्चांग आदि बनने तथा गणित आदि सिद्धान्त ज्योतिष के विषय सम्बन्धी विवाद होने पर इसी ग्रन्थ का प्रामाण्य माना जाता है। आज तक इस अमूल्य ज्योतिष के ऊपर ऐसा अपूर्व विचार नहीं किया गया था। इस की भूमिका के १५० पृष्ठों में प्रायः संस्कृत ज्योतिष, अंगरेजी आदि ज्योतिष, वेद, ब्राह्मणादि पुस्तकों से भारतवर्षीय ज्योतिषशास्त्र का गौरव सिद्ध किया गया है। केवल इस एक ही पुस्तक के पढ़ने से बिना गुरु प्रायः ज्योतिष के विषयों का ज्ञाता हो सकता है।

न्यायदर्शन भाष्य सहित सानुवाद मूल्य ३॥)

वेद, उपवेद और वेद के छः अङ्गों के रक्षार्थ हमारे ऋषियों ने छः उपाङ्ग स्वरूप छः दर्शन शास्त्र रचे हैं, इन दर्शनों में वेदोक्त सत्य सनातनधर्म को युक्ति तथा प्रमाणों से बड़े २ नास्तिकों के आक्षेपों का उत्तर देकर वेदोक्त धर्म की रक्षा की है। इन छः दर्शनों में से सब से अधिक हमारे गौतम ऋषि ने चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, जैन आदि मतों का अकाट्य उत्तर दिया है। इस दर्शन में एक बड़ी विलक्षणता यह है कि इसको ठीक २ समझ लेने पर, शास्त्रार्थ वा बहस की रीति खूब मालूम हो जाती है और चाहे कैसा भी प्रबल नास्तिक क्यों न हो इस शास्त्र के जानने वाले के सामने नहीं ठहर सकता।

ठा० उदयनारायणसिंह शास्त्रप्रकाश भवन,

मधुरापुर, विद्दूपुर बाजार मुजफ्फरपुर।

❀ विज्ञापन ❀

विदित हो कि हमारे शास्त्रप्रकाश भवन से नीचे लिखे प्राचीन आर्य ग्रन्थ मूल सूत्र, संस्कृत टीका या भाष्य और भाषानुवाद सहित छप कर विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं और अधिकांश ग्रन्थ मुद्रणार्थ प्रेसमें दिये गये हैं। जिन महानुभावों को मंगाना हो वे कृपया नीचे लिखे पते से वी० पी० द्वारा या नकद मूल्य से अभिलिषित पुस्तकें मंगा लेवें।

१ गोभिलगृह्यसूत्र सटीक अनुवाद २॥), खादिर गृह्यसूत्र सटीक सानुवाद २॥), द्राह्मायण गृह्यसूत्र सटीक सानुवाद २॥) वाराह गृह्य सूत्र सानुवाद १॥), और क्षत्रिय धर्म प्रकाश ≡), क्षत्रिय वंशावली ॥), तम्बाकू बीड़ी निषेध ⌐), और बम्बई तथा इटावा ब्रह्मप्रेस की छपी पुस्तकें हमारे पास से मंगा सकते हैं। और नये वर्ष के बड़े छोटे पञ्चाङ्ग भी यहां से मिलेंगे।

ये पुस्तकें मुद्रणार्थ प्रेस में हैं।

सटीक सानुवाद

१–आश्वलायन गृह्यसूत्र	२–पारस्कर गृह्यसूत्र
३–आपस्तम्ब गृह्यसूत्र	४–मानव गृह्यसूत्र
५–जैमिनि गृह्यसूत्र	६–हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र
७–भारद्वाज गृह्यसूत्र	८–शांख्यायन "
९–काठक "	१०–कौषीतकि "
११–वैखानस "	१२–लौगाक्षि "
१३–कौशिक "	१४–बौधायन "

शास्त्रप्रकाश भवन,
मधुरापुर, विद्दूपुर बाजार
मुजफ्फरपुर।

निवेदक—
ठा० उदयनारायणसिंह.